क्रम

प्रस्तावना

मैं अपने पाठकों से क्षमा चाहूँगा कि अभी कुछ दिन पहिले हिन्द पाकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड ने मेरे लिखे कुछ लेख 'वे क्रान्ति के दिन' नामक पुस्तिका में छाप दिये थे ; बहुत-से पाठकों ने मुझे बधाई के पत्र भेजे और अधिकांश ने यह लिखा कि 'किताब हाथ से छूट न सकी और आँखों में आँसू आ गए।" सचमुच मैं ऐसा अभागा हूँ कि उम्र भर रोता रहा और मेरी प्यारी नर्मदा भी रोती-बिलखती प्राण छोड़ गई। किताब लिखी तो पढ़नेवालों को रुला दिया। वहा मनहूस हूँ मैं, पर आपके तरस का पात्र भी हूँ। इस पुस्तिका में कुछ हँसाने की बातें भी लिखी हैं पर जिसके मन में हँसी नहीं है वह दूसरों को हँसा न सकेगा। वैसे तो मेरी यह धारणा हो गई है कि रोना मनुष्य की परम पवित्र भावना है। पैदा होते समय हम सब रोते हुए आए थे, और मरते समय सबको रुलाते जाएँगे। माँ के लिए बच्चा, और बच्चे के कष्ट से माँ रो पड़ती है। इसलिए आँसुओं की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। जिसकी आँख में आँसू नहीं वह मनुष्य नहीं पशु है। पर अपने कष्ट की बजाय दूसरों के दुख से रोने में 'पूजा' का पुण्य है। मैथिलीशरण गुप्त जी ने लिखा है :

> 'नेत्र-गंगा में नहा लो मानवो !
> पाप-तापों को बहा लो मानवो !!
> हरे हरे निर्मल करे यह नेत्र जलधारा हमें।"

इस पुस्तक में कुछ शहीदों की भी चर्चा है, आशा है पाठकगण, विशेष रूप से बहिन और बेटियाँ इसे पसंद करेंगी।

सितम्बर, १९६३ —महावीर त्यागी

१६४७ के वाद महात्मा गाधी ने महावीर त्यागी से कहा—
अव मेरी कौन सुनगा !'

एक

कबूतरी का दूध

लानत है इसकी लीडरी पर, जिसका नाम है जवाहरलाल नेहरू। इस कमबख्त से एक दिन की भी न कटवायी गयी, जब कि महात्मा गाधी ने सात-सात बार जेल भिजवा दिया। जेल थी वह ? जन्नत थी ! जो मजे उन दिनों की जेल में थे, उसका सौवाँ हिस्सा भी वज़ीरी मे न मिला। उसने दुश्मनों का भी दोस्त बनवा दिया, इसने बनी-बनाई दोस्तियाँ बिगड़वा दी। कम्यूनिस्टो से कुछ आशा थी कि, शायद यह कभी शासन सँभाल लें, तो सम्भव है, फिर मित्रो के बीच मे आराम से बुढ़ापा कट जाये , पर उनका रिवाज जेल की जगह सिर कटवाने का दिखायी पडता है। उनसे तो हमारा जुहारा ही अच्छा—मुस्कराता तो है, आँखो से कश्मीरी अदा के साथ नखरे भी करता है और शरमाता भी है, माशूक आदमी ठहरा। इस जी-मसोस की कजअदाई भी काम की है; क्योंकि जिनके पास कोई काम न हो, वे अपनी तिलमिलाहट मे दिन और स्वप्नों मे आराम की रातें गुज़ार लेते हैं। स्वप्नो पर न कोई कानून लगता है, न कोई आर्डिनेंस। मजे से, चाहे जिसे प्यार करो और चाहे जिसका मुँह चूमो। ये कम्यूनिस्ट वाले स्वप्नो पर भी

धारा १४४ लगा देंगे, देख लेना—"तुमने रात को सुपने में लाल भंडी को गाली दी थी। लिखकर दो कि, तुम गुनाहगार हो। बस, हो गया सबूत, भेजो इसे राजस्थान—वहां नहर खोदेगा।" फिर गया था—त्याग, पालीवाल और गुलाड़िया के साथ सिर पर छावड़ी धरे फिर रहे हैं त्यागीजी महाराज, गंजे सिर को खुजलाते हुए। खुदा बचाये इस साम्यवाद से—इससे तो आज का 'व्यक्तिवाद' ही अच्छा। जाहिरदारी में ही तो छूने पड़ते हैं पन्तजी के पैर, दिल से तो किसी के गुलाम नहीं हैं। पर अंग्रेजों के राज्य में जो सुख पाया, वह न मिलेगा सात जन्म में। वह फ़ैजाबाद की जेल और श्रीवास्तव, गंडासिंह, गुलाम मुर्तजा, रामबहादुर सुपरिटेंडेंट, हाक्सवर्थ और रामबगावन जेलर—तुम्हारी बंदर-भभकियां, सख्ती और शराफत हम उम्र-भर न भूलेंगे। वह काल-कोठरी, डंडा-बेड़ी, लोहे की तसला-कटोरी और बान बांटने की मशक़्क़त ; वे भूख हड़तालें, वे जलसे और नारे, वह लाठी-चार्ज, वह होली और वह वसंत !

पहने है जो कुर्ता वह मेरा यार बसती।
आते हैं नजर सब दरों-दीवार बसती।
बसती हो मेरा यार और हो प्यार बसती।
साक़ी की सुराही में वहे धार बसती।
बुलबुल क़फ़स[1] में सर धुने गुलशन में हो बसंत।
तिकड़म से ही ला दो कोई इक तार बसती।

(जेल में—त्यागी)

कहां गये वे दिन कि, जब पिटता मैं था और रोते तुम थे।

---

१. पिंजरा

आज तुम पिट रहे हो और मैं हँसता हूँ।

शर्मदा मुलाकात को आयी, कुछ फल ले आयी। जेलर ने फल आने न दिये। दस मिनट की भेंट, वह भी तीन महीने मे एक बार। शर्मदा रोती हुई-सी फाटक से बाहर चली गई। मैं भी गदलाई आँखों अपनी बैरक की ओर जा रहा था कि, रास्ते मे गोपी बाबू (स्वर्गीय श्री गोपीनाथ श्रीवास्तव) मिल गये। पूछा—"शर्मदा खुश थी?" मैंने कह दिया कि उसके फल लौटा दिये। गोपी बाबू गये और जेलर से जाकर कह दिया—"अरे त्यागी के फल लौटा दिये?" फिर आँख मारकर बोले—"हूँ के० है के०।" उसने कहा—"अच्छा, अभी भेजता हूँ।" फल आ गये। मैंने पूछा—"गोपी, तुमने के० है के० का क्या सकेत किया था?" हँसकर बोले—"जानते नही, जेलर कायस्थ है। इशारा यह था कि त्यागी भी कायस्थ है। उसे यकीन आ गया। अब तुम्हारी बीड़ी भी नही पकड़ी जायेगी।" कभी जात-बिरादरी के नाम से भी जेल मे लाभ पहुंच जाता है।

फैजाबाद जेल मे लगभग ३०० राजनीतिक कैदी, २०० अनैतिक कैदी, हजारो जगली कबूतर और सहारनपुर के कवि कन्हैयालाल प्रभाकर सब साथ-साथ रहते थे। श्रीअलगूराय शास्त्री का नियम था कि जेल आने के दस-पद्रह दिन बाद खाँसी, बुखार और बलगम के बहाने अस्पताल की बैरक मे चले जाते थे। उनकी अधिकाश जेले अस्पतालो मे ही कटी हैं। तिकडम के लिए यो तो मैं बहुत बदनाम था, पर ये हजरत मेरे भी बाप थे। वहाँ पर उन्हें दो सेर दूध, दही और फल

मिलते थे। अब तो जिसे खाँसी होनी है, पेनीसिलीन की गोली खाता है और नमक का पानी उगलता है। जेल मे कोशिश करते थे कि, खाँसी या जुकाम हो जाये ; पर हम जैसे अभागों को जुकाम तक ने जवाब दे रखा था।

उन दिनों अलगूराय शास्त्री बड़े कट्टर किस्म के आर्य-समाजी थे। उन्हें हवन की सामग्री मिलनी चाहिए, इस प्रश्न पर भूख-हड़ताल कर चुके थे। रोज हवन करते थे। उनको देखकर आर्यसमाजी होने का भी बहुतों ने लाभ उठाया; क्योंकि उनको अपने पैसे से घी मँगाने की आज्ञा थी। शायद आधा छटाँक घी रोजाना मँगा सकते थे। मैंने डेढ छटाँक की माँग कर दी, यह कहकर कि, मैं तीन पुश्त से आर्यसमाजी हूँ। पाठकगण हमारे जेल के कच्चे चिट्ठो को पढकर बुरा न मानें; क्योकि वहाँ हम लोगों ने सर्वसम्मति से जेल को झूठ-सच और पाप-पुण्य की मर्यादा से बाहर घोषित कर दिया था। कुछ काम तो था नही, इन्ही खेल-तमाशो मे दिन कटते थे। हम जेलखाने को परलोक कहते थे। मुझे सुपरिटेंडेंट ने आर्यसमाजी मानने से इन्कार कर दिया। मैंने पूछा कि आर्यसमाजो नही, तो और क्या हूँ—बता दीजिये, मैं उसी धर्म के त्योहार मनाना शुरू करूँगा। सुपरिटेंडेंट ने कह दिया—"तुम्हारा कोई धर्म नही है।" बस, मैं घी-सामग्री से वंचित रह गया। मेरी तकदीर से एक दिन फैजाबाद के अंग्रेज कमिश्नर मिस्टर व्हाइट का संदेश मिला कि, वह अगले रविवार को जेल मे कबूतरों का शिकार खेलने आवेंगे। श्री अलगूराय शास्त्री ने घोषणा कर दी कि, यदि जेल मे एक भी कबूतर की हत्या हुई, तो मैं

आमरण उपवास कर दूंगा। भला ऐसा कैसे हो सकता था ! सारे मित्र परेशान हो गये। एक नियम यह भी था कि, जब कोई चुनौती सरकारी कर्मचारियों को दे दी जाये, तो वह मोर्चा सबको लड़ना होगा। कई बार आपस में वाद-विवाद हुए, पर शास्त्रीजी अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहे। इसी बीच श्री अजितप्रसाद जैन के छूटने की तारीख आ गयी। उनकी 'शोक-सभा' हुई। जब कोई साथी छूटता था, तो उसके सम्मान में शोक-सभा हुआ करती थी और कुछ चना-चबेना भी। इसी तरह आनेवालों की स्वागत-सभा हुआ करती थी। इलाहाबाद के बिलवी बाबू ने नियम बना दिया था कि, जब कोई नया मित्र सजा पाकर जेल में आये, तो जो भी आगतुक को पहले-पहल देखे, वह जोर से दो बार 'आये'—'आये' का नारा लगा दे और जो इस नारे को सुने, वह भी—चाहे टट्टी में ही क्यों न हो—दो बार जोर से 'आये'—'आये' कह दे। इस तरह सारी जेल 'आये'—'आये' के नारों से गूंज उठती थी। फिर सब लोग फाटक पर इकट्ठे हो जाते और मेहमान को 'आये' —'आये' के नारे लगाते हुए जुलूस बनाकर जेल के आँगन में ले आते। फिर झगड़ा होता कि, कौन-सी बैरक में जायेंगे। उसी बैरक में सभा होती और हम आंदोलन के पूरे-पूरे समाचार सुनते। छूटनेवाले मित्रों को भी फाटक तक छोड़ने जाते। वह 'शव-यात्रा' कहलाती थी। उस जुलूस में नारे नहीं लगते थे। फाटक पर सब लोग उनसे गले मिलते और ऐसे रोते कि, जैसे कोई बेटी विदा हो रही हो। छूटनेवाले फूट-फूटकर रोते थे। हमें छूटना पसद नहीं था। अपनी शोक-सभा

में मैंने यह ग़ज़ल पढ़ी थी :

लाशये मुश्ताक को[1] हाजत कफन की कुछ नहीं।
मौत की पुरानी के बाकी तार रहने दीजिये।
ढूंढती फिरती है परदा अब तो उरयानी[2] मेरी।
चश्मपोशी कीजिये[3], इसरार रहने दीजिये[4]।
महफिले ऐहबाब[5] से मुझको न बाहर कीजिये।
जीनते गुल[6] का सबब हूं, खार रहने दीजिये।
आबखोरे[7] हैं किसी पर जल चढ़ाने के लिए।
मुझको अपनी मौत का बीमार रहने दीजिये।

श्री केशवदेव मालवीय उन दिनों हिन्दुस्तानी सोशलिस्ट बने हुए थे और नाक-काट-आंदोलन का समर्थन कर रहे थे। उन्होंने निम्नलिखित शेर पढा

कहैं केशव सुनो भई त्यागी काम हुमिदारी सों करियो चाहिये।
होत है फकत छ मास की बनाओ नमक चाहे कतरो नाक।
उस्तरे से काटना अच्छा नहीं उस नाक का।
छोटा चाकू लीजिये बेधार रहने दीजिये।

श्री अजितप्रसाद जैन की शोक-सभा मे प्रस्ताव हुआ कि, वे मिस्टर व्हाइट, कमिश्नर से मिलें और उन्हे समझा दें कि, शिकार के लिए जेल न आयें, वरना बहुत भयकर परिणाम होगा। हममे से एक मित्र पोस्ट-मास्टर भी थे। *तमाम तिकडम* की डाक रात को उनके पास आती थी। उस रात को अजित-प्रसादजी का सदेश आ गया कि, कमिश्नर शिकार को नही

---

१ आशिक की लाश को २ नग्नता ३ नजर बचाइए ४ जिद न करिए ५ मित्र-सभा ६ फूल की शोभा ७ जल-पात्र।

आयेंगे। श्री अलगूराय को उनकी सफलता पर बधाई दी गयी और 'महर्षि दयानंद की जय' और 'वैदिक धर्म की जय' के नारे लगाये गये।

सब जेलवाली बैरक या काल-कोठरी में रहते थे; पर चूँकि मैं देहरादून-मसूरी की ठंडी हवा का आदी था, इसलिए रात को मुझे खुले में सोने की आज्ञा मिली हुई थी। वहाँ सरदार नरबदाप्रसाद सिंह और कवि कन्हैयालाल प्रभाकर आदि से रात-भर हँसी-ठट्ठा करते रहते थे। औरों के दिन आराम से कटते थे और मेरी रातें।

श्री अलगूराय शास्त्री मुझे 'राक्षस' कहते थे। एक दिन मैंने एक कबूतरी पकड़ ली और उसे अपने कमोड के बर्तन में छिपा लिया, ताकि तलाशी मे न पकड़ी जाये। अगले दिन उस कबूतरी को लेकर मैं शास्त्रीजी की अस्पतालवाली बैरक में जा पहुँचा और उसकी गर्दन पकड़कर मरोड़ने लगा कि, अभी इसकी हत्या करता हूँ। श्री अलगूराय शास्त्री ने कहा—"अरे राक्षस, यह क्या करता है।" मैंने कहा—"अगर एक गिलास दूध दो, तो छोड़ दूँगा, वरना इसे कच्चा चबा जाऊँगा।" शास्त्रीजी उन दिनों कट्टर किस्म के आर्यसमाजी थे। फ़ौरन दूध का भगोना मेरे सुपुर्द कर दिया। मैं भगोना मुँह से लगाकर दूध पीने लगा। दो सेर था। सारा तो पी नहीं सकता था, पर राक्षस होने के नाते ऋषियों को सताना धर्म था। इसलिए भगोने को उड़ेलता ही चला गया। दूध मेरे मुँह से बहकर छाती और पेट से पैरों तक बह गया। केवल जाँघिया पहने हुए था। अजीब हुलिया थी। दोस्त तमाशा देख रहे थे।

भगोना खाली करके 'रावणाचार्य की जय' बोलता और अपनी कबूतरी को प्यार करता अपनी काल-कोठरी मे लौट आया। अगले दिन फिर कबूतरी ले गया। शास्त्रीजी भी जाति के भूमिहार थे। देखते ही बोले—"आज भगोने मे कुल एक ही गिलास दूध है। राक्षस, चुपके से दूध पी लो और कबूतरी को मत सताओ।" इस तरह रोज मेरी कबूतरी आधा सेर दूध देने लगी। तग आकर शास्त्रीजी ने मेरे किसी मित्र—शायद स्वर्गीय श्री गुरदेवलाल, या श्री रघुकुल तिलक, या प्रो० राधेश्याम, या श्री चद्रधर चौधरी—से शिकायत की कि, इस राक्षस से मेरा पिंड छुडाओ। जरूर उनको भी कोई मक्खन-टोस्ट खिलाया होगा, क्योकि चुपके से मेरी काल-कोठरी मे आकर मेरे मित्र ही मेरी कबूतरी को चुरा ले गये और उसे उडा दिया। ऐसे होते हैं ये कांग्रेसवाले—दूसरो का दूध सहन न कर सके। मैं जब स्नान करके दूध पीने चला, तो क्या देखता हूँ कि, कबूतरी गायब। एक चाडाल-चौकडी बाहर खडी तमाशा देख रही थी। मेरे बाहर निकलते ही सब ठठा मार-कर हँस पडे। मैंने कहा—"अच्छा, यह मित्रता का फल है।" तकदीर से, घास मे हरे रग का २ इच लम्बा मोटा-सा एक कीडा मिल गया। उसे पत्ते पर धर और जेब में हाथ छिपा, मैं शास्त्रीजी के पास पहुँचा। हँसकर बोले—"भैंस कहाँ छोड आये ? दुष्ट, अब दूध नही मिलेगा।" मैंने कहा—'शास्त्रीजी, आत्मा सबकी बराबर है—भैंस हो, या कबूतरी, या कीडा।" और, जेब से निकालकर मैंने कहा—'चबाता हूँ अभी दाता से किच्-किच्।" बोले—"हरे-हरे दुष्ट, ऐसा न कर। तू रोज

दूध पी लिया कर; पर यह काम छोड़ दे।" एक मित्र बोले—"भूमिहार को तगा मात दे गया।" शास्त्रीजी ने कहा—"लोहे को लोहा ही काटता है।" कहाँ गये वे दिन, जब कीड़े भी दूध देते थे! अब तो मित्रों की गायें भी सूख गयीं।

दूसरी बार बरेली जेल में भी शास्त्रीजी बहुत बीमार हो गये। उनकी बीमारी बीसियों वर्ष से उतार-चढ़ाव करती आयी है। सबकी सलाह हुई कि, शास्त्रीजी को छुड़वाया जाय। बस, हमने ऐसा वातावरण पैदा कर दिया कि, एक दिन शास्त्रीजी की रिहाई की तिथि आ गयी। शोक-सभा होने के बाद सुपरिटेंडेंट उनका अंतिम निरीक्षण करने आये, तो हम बहुत-से लोग अस्पताल पहुंचे। आंदोलन का सब काम उनके सुपुर्द हो चुका था। दुःख-भरे शब्दो मे हम आपस मे कहने लगे कि, इनके बचने की अब कोई आशा नही आदि, आदि। छूटने की अंतिम खानापूरी होते समय मुझसे न रहा गया। मैं उन दिनों हँसी का फव्वारा था, गाधी के चमन का। मैंने डाक्टर साहब से पूछा कि, इनको बीमारी का भी आपको कुछ पता चल सका? डाक्टर ने मुझसे पूछा कि, आपकी राय मे क्या बीमारी है? मैंने कहा—"आप जानते नही, यह असाध्य रोग है। इसको 'आलपिनाइटिस' कहते हैं।" डाक्टर ने कई बार पूछा कि 'आलपिनाइटिस' क्या होता है? साथियो ने मुझे केहुनी ठसकानी शुरू कर दी कि, चुप रहो, पर मुझे चुप रहने की आदत कहाँ। जब डाक्टर ने फिर पूछा कि, 'आलपिनाइटिस' किसे कहते है, तो मैंने शास्त्रीजी के तकिये के नीचे हाथ डालकर उनको एक आलपिन दिखा दिया कि, मसूड़ों में

इसको चोट लगने से जो खून निकलने की बीमारी होती है, उसको 'मालपिनाइटिस' कहते हैं। इस बीमारी की दवा सिवाय मुक्ति के दूसरी नहीं है। वैसे तो सब शास्त्रीजी के साथकों हँसी आ गयी, पर सबने क्रोध और घृणा की दृष्टि बनाकर मेरी तरफ़ देखना शुरू कर दिया; बोले—"शर्म नहीं आती, मित्रों के मरते रहने पर भी हँसी-ठट्टा करते हो!" मैं अपनी बैरक में चला गया। मित्रों ने मुझे शव-यात्रा में सम्मिलित होने की आज्ञा भी नहीं दी। बैरक से ही मैंने 'टा-टा' किया। अब शास्त्रीजी ईश्वर की कृपा से खूब तकड़े हैं और यू० पी० के वन-विभाग के मंत्री भी हैं।[1]

---

१. अगस्त, १९६३ में श्री अलगूराय शास्त्री ने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया।

दो

बापू रो पड़े

यह सन् १६२४ की बात है कि जब हमारा सन् १६२१ का खिलाफत आन्दोलन ढलाव पर था, लोग अपनी-अपनी सजाएँ काटकर जेलों से छूट रहे थे। कुछ अपने स्वास्थ्य को, तो कुछ अपने परिवार और रोजगार को सँभाल रहे थे। पर जनता की भड़की हुई उत्तेजना अभी शान्त न हो पाई थी। हमें-तुम्हें भी जब कभी क्रोध आ जाता है तो यह जरूरी थोड़े हो है कि वह सारा का सारा अपनी सास-ननद, या बेटे-भतीजे पर ही खर्च हो जाय, कभी दूध के गिलास, चाय के बरतन, कच्चे सुरमे की पेंसिल, और खुन्टे चक्कू पर भी बरस पड़ता है। जन-समूह का हाल व्यक्तियों से कहीं अधिक बेढब होता है। जनता का जोश बिना विध्वस किए शान्त नहीं होता। वह गिलास-प्यालों की बजाय रेल की पटरी, बस, मोटर और मकानों के खिड़की-शीशों और बिजली के खम्भों पर उतरता है। किसी भी सार्वजनिक आन्दोलन का उठाना आसान है, शान्त करना मुश्किल।

हिन्दू-मुस्लिम एकता और फूट

महात्मा गाधी के रोकते-रोकते भी हमने अग्रेजों के विरुद्ध काफी घृणा और वैर पैदा कर लिये थे । गैरो से वैर होता है तो अपनो से मेल हो जाता है, खिलाफत के दिनो सयुक्त मोर्चे के कारण हिन्दू-मुसलमानों में ऐसी एकता हो गई थी कि जैसे दूध-शक्कर की । लेकिन आन्दोलन का ठडा पड़ना था कि आपस मे फिर फूट पड़ गई । हिन्दुओ ने 'शुद्धि' और मुसलमानों ने 'तबलीग़' शुरू कर दी । बस होने लगे दगे । कही मस्जिद के सामने बाजा बजाने पर, तो कही शख बजाने, या 'अज़ान' देने पर । अन्धा क्या चाहे ? दो आँखें । विदेशी सरकार की मनचाही हो गई । मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा की भी बन आयी, लेकिन काग्रेसमैन का बाज़ार-भाव गिरने लगा । हममें से जो हिन्दू थे, उन्हे तो ज्यादा फिक्र न पड़ी, क्योकि अधिकाश हिन्दू अभी तक काग्रेस के साथ थे, पर मुसलमानो मे काग्रेस वाले 'काफिर' कहलाने लगे । इन्ही दिनो एक बार मैं अपने साथी बिजनौर के अब्दुल लतीफ से मिलने गया । उनके पिता और मेरे दादा ने साथ-साथ वकालत पास की थी, इसलिए मैं उनके पिता को दादा साहिब कहता था । मैंने पूछा, 'दादा साहिब, लतीफ चचा कहाँ हैं ।" उन्होंने अपने चौबारे की ओर उँगली उठाकर उत्तर दिया, "पडत जी को पूछते हो ? उधर गाधी-आश्रम में होंगे ।"

इस वातावरण मे गाधीजी ने काग्रेसवालो को लिखा था कि तूफान मे जगल के बहुत-से वृक्ष उखड़ जाते हैं । केवल

वही खडे रहते हैं कि जिनकी जडें मजबूत हो। इसलिए असली काग्रेसमैन वही है कि जो इस साम्प्रदायिक ज्वार-भाटे मे इकला खडा दिखाई दे। वडी मुसीवत के दिन थे।

आपत्तिजनक भाषण

इन्ही दिनो काग्रेस के अध्यक्ष मौलाना मुहम्मद अली का एक भाषण छपा जो उन्होने मुसलमानो मे दिया था : "मैं एक 'फाजिर' (व्यभिचारी) और 'फासिद' (दुश्चरित्र) मुसलमान को भी महात्मा गाधी से अच्छा मानता हूँ।" बस पजाव के हिन्दू अखवार बौखला उठे। इस भाषण के बाद साबित कदम हिन्दू काग्रेसियो के पैर भी उखडने लगे। मैं आल इडिया काग्रेस कमेटी का सदस्य था और प० जवाहरलाल नेहरू सैक्रेटरी। काग्रेस अध्यक्ष की यह तकरीर असहनीय हो गई। मैंने अविश्वास का प्रस्ताव भेज दिया और श्री नरदेव शास्त्री ने उसपर अनुमोदन के हस्ताक्षर कर दिये। जवाहरलालजी पहिले से ही बहुत कायदे-करीने के आदमी है। उन्होने मुझे पत्र लिखा कि "क्या तुम सचमुच ही इस प्रस्ताव को पेश करना चाहते हो ?" मैंने जवाब दे दिया कि "बहुत सोच-समझकर भेजा है, मैं इसे अवश्य पेश करूँगा।" प्रस्ताव एजेंडा मे छप गया। २७ जून को ए० आई० सी० सी० की बैठक अहमदाबाद मे बुलाई गई। अहमदाबाद नगरपालिका के चेयरमैन सरदार पटेल स्वागत-समिति के अध्यक्ष बने।

हम लोग कमाते-धमाते तो कुछ थे नही, फिर भी काग्रेस के लिए जो लम्बे-लम्बे सफर करते, उनका खर्चा काग्रेस से

नही लेते थे। तीसरे दर्जे मे चलते और कई प्रान्तो के लोग एक ही डब्बे में बैठ जाते। एक-दूसरे के अनुभव सुनते, चना-पकौड़ी चबाते और अपनी मुसीबतो का ठट्ठा उड़ाते चले जाते थे। अहमदाबाद की यह बैठक कांग्रेस के इतिहास में अमर रहेगी। महात्मा गाधी जेल से छूटकर पहिली बार आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन मे आए थे। उनकी अनुपस्थिति मे प० मोतीलाल नेहरू, श्री देशबन्धु दास, हकीम अजमलखाँ और रामभजदत्त चौधरी, विट्ठल भाई पटेल आदि नेताओ ने मिलकर एक जाँच कमेटी द्वारा यह सिफारिश कर दी थी कि कौंसिलो का बाईकाट हटाकर कांग्रेस को कौंसिलो के अन्दर से आन्दोलन चलाना चाहिए। और स्वराज्य पार्टी के नाम से सैकडो कांग्रेसमैन एसेम्बलिया के मेम्बर भी चुने जा चुके थे।

यद्यपि क्रान्तिकारी दल के नेताओ ने नागपुर कांग्रेस मे महात्मा गाधी को वचन दे दिया था कि उनके असहयोग आन्दोलन को खुला अवसर देंगे और इस बीच मे बम आदि चलाना बन्द रहेगा। लेकिन फिर भी कुछ नवयुवक ऐसे थे जो अंग्रेज़ी सरकार के जुल्म को सहन न कर सके, और पजाब-बगाल मे इस दल की खुटपुट फिर होने लगी। कलकत्ते का पुलिस कमिश्नर, सर चार्ल्स टेगर्ट, क्रान्तिकारियो के बुरी तरह पीछे पडा हुआ था। शहीद गोपीनाथ साहा ने उसे गोली से मारने का निश्चय किया, पर सर चार्ल्स के धोखे मे एक दूसरे अंग्रेज मिस्टर डे को मार डाला। श्री गोपीनाथ को फाँसी हो गयी। आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी की बैठक श्री गोपीनाथ

साहा के शहीद होने के तुरन्त बाद हो रही थी।

अविश्वास प्रस्ताव

बैठक के प्रारम्भ से पहले ही मौ० मुहम्मद अली ने यह कहते हुए कि "पहले मेरी तकरीर का फैसला हो जाना चाहिये," मुझे आवाज लगा दी "अविश्वास का प्रस्ताव पेश करो"। मैं २४ वर्ष का तो था ही, खूंटा-सा प्लेटफार्म पर जा खडा हुआ। "मिस्टर प्रेसीडेंट एंड फ्रेंड्स" कहते ही गाधीजी ने मुहम्मद अली से इजाजत चाही, "प्रस्ताव से पैले (पहले) मुझे दो मिनट प्रस्तावक से बात करने का मौका होना चाहिए।" मौलाना ने ज़ोर से कहा, "आर्डर, आर्डर, पहिले प्रस्ताव का फैसला होगा, फिर दूसरी बात।" महात्माजी को चुप करना कठिन था। उन्होने मुझसे कहा, 'तुमे तो मुझसे बात करने मे एतराजी (एतराज) नई है," मैंने कहा, "नही।" तो ज़ोर से हँसते हुए बापू ने कहा, "जब मे और वो राजी तो बीच मे क्यो बालता है काजी।" सारी सभा हँसी से गूंज उठी। मैं फट से गाधीजी के पास जा बैठा।

बापू का तर्क

बापू बोले, 'यह प्रस्ताव तो ठीक नई है। मौलाना ने इसमे किसी और को तो कुछ कहा नई। महात्मा गाधी से 'फाजिर-फासिद' मुसलमान को •अच्छा समझने की बात है। इसम कोई गाली तो नही है। गाली का साबूत तो उसका लगना ठेरा। गाधी तो इसका लगना स्वीकार नई करता।

फिर तो वह खलास हो गयी।"

मैंने उत्तर दिया—"महात्मा गांधी से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस तकरीर के अनुसार 'अध्यक्ष' की निगाह में एक बदमाश और बदचलन मुसलमान भी दूसरे सम्प्रदाय के श्रेष्ठतम व्यक्ति से ऊँचा है। आजकल जगह-जगह हिन्दू-मुसलमानों के दंगे हो रहे हैं, ऐसी तकरीर जलती हुई आग में पेट्रोल का काम करेगी।"

गांधीजी—"तुम्हें इस प्रस्ताव के पास हो जाने की आशा है? कितने वोट मिलेंगे?"

मैंने कहा—"दो वोट तो पक्के हैं। पास हो या न हो, कम से कम यह तो रेकार्ड पर आ जायगा कि कांग्रेस के अध्यक्ष की तकरीर पर कुछ लोगों को आपत्ति थी।"

महात्माजी—"ऐसी बात को लाने से कांग्रेस का रेकार्ड अच्छा होने की बजाय और काला बनेगा। हिन्दू-मुसलमान को साथ रखना है तो एक-दूसरे के खोट को निभाना पड़ेगा। तुम जानते मित्रता किसे कहते?" मैंने कहा, "एक दूसरे को प्यार करने को मित्रता कहते हैं?" बापू ने कहा, "नहीं, यह तो बदमाशी है, मित्रता के मानी तो एक दूसरे के खोट को निभाना है, जो ऐसा नहीं करता वह मित्र नहीं है, यह प्रस्ताव ठीक नहीं।"

"अब वापिस तो नहीं करूँगा बापू।" मैंने उठते हुए कहा।

बापू टोकते हुए बोले, 'अच्छा तुमारी खुशी। पर एक बात का जवाब लूँगा, तुम अकलमंद है या महात्मा गांधी?"

मैंने कहा—"महात्मा गांधी।"

बापू बोले—"फिर तो हो गया । एक बेवकूफ को अक्ल-मन्द की बात माननी होगी, यह दलील तो तुमको पसन्द आई होगी । वो तो मैं पैले से जानता था, बेवकूफ को अक्ल की दलील नई, बेवकूफी की पसन्द आती है । अब तो वापिस लेंगे ?"

अब मैं क्या करता । प्रस्ताव वापस ले लिया ।

इसके बाद बैठक मे गाधीजी के चार प्रस्ताव पेश हुए । एक मि० डे की राजनीतिक हत्या की निन्दा का, और दूसरा अदालतो, स्कूल, कालेज, असेम्बली और विदेशी कपडे के बहिष्कार का । तीसरे प्रस्ताव मे कहा गया था कि जो भी प्रान्तीय या जिला काग्रेस का पदाधिकारी काग्रेस की नीति और प्रोग्राम के विरुद्ध कार्य करेगा उसका पद खाली समझा जायेगा और उसकी जगह दूसरे व्यक्ति को चुन लिया जायगा। चौथे मे कहा गया था कि चार आने की बजाय हर काग्रेस सदस्य को अपने हाथ का कता हुआ सूत हर महीने की १५ तारीख से पहिले दाखिल करना होगा । जो ऐसा नही करेंगे उनपर अनुशासन की कार्यवाही की जायगी। श्री देशबन्धु दास और प० मोतीलाल नेहरू की पार्टी ने पहिले प्रस्ताव मे शहीद गोपीनाथ की देशभक्ति और साहस की सराहना का सशोधन और दूसरे मे अदालतो के बायकाट के सिलसिले मे दीवानी के मुकदमो मे पैरवी करने के हक का सशोधन पेश कर दिया । बापू दोनो सशोधनो के विरुद्ध थे । शहीद गोपीनाथ सम्बन्धी सशोधन के बारे मे उनका कहना था कि काग्रेस का ध्येय अहिंसा है, वह हिंसा के किसी भी

पार्य की सराहना नही कर सकती। आदि-आदि। देशबन्धु के सशोधन के पक्ष मे ७० वोट आए और विरोध मे ७८। सशोधन गिर गया। दूसरे प्रश्न पर वोट लेने से पहिले ही श्री दास और प० मोतीलाल नेहरू और उनकी पार्टी के ५७ सदस्य (स्वराज्य पार्टी) बैठक छोड़कर चले गये। मतदान मे गाधीजी के पक्ष की विजय हुई, पर इन लोगो के बैठक छोड देने का गाधीजी पर गहरा असर पड़ा। उन्होंने अपने अनुशासन सम्बन्धी प्रस्तावो मे सशोधन कर लिया, जिसके पास होने से कौंसिलो के मेम्बर भी काग्रेस पदाधिकारी बने रहे। साथ ही गाधीजी ने एक नया प्रस्ताव पेश कर दिया, जिसके द्वारा अदालतो के बहिष्कार के सिलसिले मे मोतीलाल और दास बाबू की इच्छा के अनुसार दीवानी के मुकदमो मे पैरवी करने की छूट दी जानेवाली थी। इस प्रस्ताव को पेश करते ही डा० चोहितराम ने कहा कि यह प्रस्ताव अवैधानिक है क्योकि यह आज ही के पास किये बहिष्कार सम्बन्धी प्रस्ताव के विरोध में है। गाधीजी ने कहा, पास तो हो गया है परन्तु जितने बहुमत से यह प्रस्ताव पास हुआ था मैं उससे धोखे मे नही आ सकता। मोहम्मद अली ने महात्माजी से कहा, 'आप भी बैरिस्टर हैं, बताइये मैं क्या रूलिंग दूं।" महात्माजी बोले, "चोहितराम की बात तो ठीक है पर मैं नही चाहता कि सदस्य लोग अपनी मर्जी के विरुद्ध मेरे असर मे आकर प्रस्ताव पास करें। पिछला प्रस्ताव उन्होने अपनी मर्जी से पास नही किया था।" मौ० मुहम्मद अली ने अपनी रूलिंग दे दी कि प्रस्ताव पेश नही हो सकता।

इसके बाद ही जल्से की कार्यवाही खत्म होने लगी। मौलाना आजाद ने महात्माजी से प्रार्थना की कि आप इतने दिन बाद हमारे बीच मे आए है, इस बीच मे बहुत-सी तब्दीलियां हो गई हैं, जल्सा समाप्त हो जाने से पहिले हम लोग आपकी जबान से दो लफ्ज़ सुनना चाहेगे। गाधीजी ने शौकतअली की तरफ को देखा, और बात की बात मे उनके चेहरे पर सिलवटें पड़ गईं और गाल फड़कने लगे। पल भर मे आँसुओं की धारा बहने लगी और चादर से मुँह पोछते हुए बच्चो की सी हिचकियाँ ले-लेकर बापू कहने लगे, "यह चोहितराम जो मेरे बच्चे की तरह पला है आज मुझे पाइंट आफ आर्डर सिखाता है। आज तो मैं अकेला पड गया हूँ। आप सबने मुझे केवल हराया ही नही बल्कि इकला जगल में छोड दिया।" हम सब लोग भौचक्के-से रह गए। मौलाना मोहम्मद अली दोजानू बैठकर (घुटनो पर) कि—जैसे सिजदे को बैठते हैं—दोनो हाथ आगे बढाकर बोले, "खुदाया, हम आशियो (पापियो) को बख्श दो।" और जोर-जोर से रोने लगे। बस सारी सभा आँख पोछने लगी। उस दिन बड़े से बड़े लीडर बच्चे बन गए। मौलाना आजाद ने गाधीजी को सँभाला और बा० पुरुषोत्तम दास टडन ने खडे होकर हम सबो की ओर से गाधीजी को आश्वासन दिलाया कि हम उनके साथ हैं, उनके पसीने के साथ खून बहा देंगे, आँख मीचकर उनके इशारे पर चलेंगे। गाधीजी चुप हो गए थे, फिर रो पड़े। हमारी युवक-मण्डली से रहा न गया, रूँधे हुए गले फाड-फाड़कर हमने 'महात्मा गाधी की जै' के नारे लगाने शुरू कर

दिये। महात्मा गांधी को इतनी बुरी तरह रोते हुए आल-इंडिया कांग्रेस कमेटी के सदस्यों के सिवाय कभी भी किसी-ने न देखा होगा। उन्ही आँसुओं की सीची हुई भारत माँ की आशा-लता पर आज फूल खिले हैं।

फिर उसी दिन शाम को हम बापू की प्रार्थना में गए। वहाँ जो कुछ हुआ वह तो अभी तक दुनिया को मालूम ही नही। मेरी किताब की सारी कीमत इसी छोटी सी घटना मे है। प्रार्थना के मंच पर बापू के पास ही और नेताओं के साथ प० मोतीलाल नेहरू भी पश्चात्ताप की मुद्रा बनाये बैठे थे। अपनी पथरीली-सी आँखो को इधर-उधर घुमाते हुए भाईजी (मोतीलाल नेहरू) कुछ खोये-खोये-से दिखाई देते थे। मानो किसी खोये हुए विचार को ढूंढ रहे हो। ऐसे ही असमंजस को भुलाने और गहरे मानसिक घाव को दबाने के लिए लोग सिगरेट आदि का पान करते हैं। अनायास गीता के पाठ के ठीक बीच मोतीलाल नेहरू ने अपनी सिगरेट सुलगा ली और लम्बे-लम्बे दम खीचने लगे। बापू ने उनकी ओर देखा और आँख मीच ली। प्रार्थना समाप्त होने पर प्रवचन आरम्भ हुआ। बापू बोले

"आज तो मेरा मन पाप का बासा हो गया। मोतीलाल तो मेरे सगे भाई के समान हैं, इनसे तो मुझे कभी पर्दा नही हुआ। मैं तो इनसे सारी बात कर सकता। अपने जी का रहस्य भी खोल सकता। फिर भी इन्होने जो अपनी सिगरेट जलाई तो मैंने देखा, पर मैं देखकर चुप हो गया। मेरा फर्ज था, इनसे बोलूँ कि

प्रार्थना में सिगरेट नहीं पीना। पर मैं अपने मन को दबाकर बैठ गया। पर मन तो पाप को हज़म नहीं कर सकता। फिर प्रार्थना में मन लगना कैसे सम्भव हो सकता। मेरा मन साफ़ होता तो मैं इनको सिगरेट बुझाने को जरूर कहता। पर मेरे मन में तो आज खोट आ गया। मुझे ऐसा लगा कि मोतीलाल तो मुझसे रुष्ट हैं, वह प्रार्थना भी छोड़कर न चले जाएँ। ऐसा डर मुझे लगा। मोतीलाल तो मुझे प्यार करते हैं सो मैं जानता हूँ फिर मुझे डर कैसा? डर तो पाप की परछाईं को कहते हैं।"

इतने में मोतीलालजी की गिग्घी बँध गई। सिगरेट बिना बुझाये दूर फेंककर रुमाल से आँसू पोंछते हुए फफक-फफककर रोने लगे। कहाँ तक सीखेगी हमारी सन्तति सच्चे दिलों की भाषा। दिल तो आँसुओं की भाषा जानता है। मोतीलाल के उन पवित्र मोतियों की झलक ने हमारी भी आँखें निखार दीं। मानो अपने मन के पाप भी धुल गए। आज हमें नचाने, गवाने और हँसानेवाले तो बहुत हैं, पर वे आत्म-स्नान कराने वाले न रहे। अब आँखें रोना चाहती हैं। फिर से आ जाओ बापू!

तीन

अम्मा बाल्टी मँगाओ

सन् १६३६ में यू० पी० असेम्बली के चुनाव लड़ने के लिये जो कांग्रेस पार्लियामेंटरी बोर्ड बना, स्व० रफी अहमद किदवई उसके सभापति थे और श्री जवाहरलाल नेहरू, टंडनजी, पन्तजी, बाबू श्रीप्रकाश, सम्पूर्णानन्दजी, स्व० आचार्य नरेन्द्रदेव आदि सदस्य। मैं भी इसका एक सदस्य था और मुझे इस बोर्ड ने मेरठ का चुनाव कमिश्नर भी बना रखा था। मेरा काम था कि जिले-जिले में घूमूं और वहाँ के कार्यकर्ताओं से बातचीत कर इस बोर्ड को ऐसे साथियो के नाम सुझाऊँ, जिन्हे कांग्रेस का टिकट दिया जाय। आये दिन इस बोर्ड की बैठकें हुआ करती, कभी इलाहाबाद मे, तो कभी लखनऊ मे। जहाँ-जहाँ हमें सफलता की आशा थी वहाँ की करीब-करीब सभी सीटो पर अपने उम्मीदवारो के नाम निश्चित कर चुके थे, पर अभी घोषित नही किये थे।

एक दिन पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त ने, जो केन्द्रीय असेम्बली के मेम्बर थे, बातो-बातो मे कहा, 'चुनाव लड़ना क्या कोई आसान काम है? बिना रुपये के सूबे मे जल्से और दौरा करना तो क्या, इश्तहार बाँटने भी मुश्किल हो

जायेंगे।"

हमारे कोष मे उस दिन केवल ७० या ८० रुपये थे। मेरी तेज़ ज़बान और फिर काट-पेंच का शौक, बोल उठा, "बीस या इक्कीस सीटें खाली रह गई हैं, जहाँ ताल्लुकेदार और ज़मीदार खड़े हो रहे हैं। हमे तो वहाँ कामयाबी की आशा है ही नही, फिर उनसे कुछ रुपया ही क्यो न झटक लिया जाय?" पन्तजी ने हँसते हुए कहा, "तुम्हे मिले तो ले आओ।"

मुझे तो बस इस इशारे की देर थी। बुलन्दशहर के ज़िले मे दस हज़ार रुपये पर एक सीट का सौदा पक्का कर लिया। रफी साहब को उसकी खबर की, तो बोले, "इस सीट से हम अपने उम्मीदवार को हरगिज़ न हटायेंगे, क्योकि यह जीतने-वाली सीट है। केवल उसी सीट से उम्मीदवार को वापस ले सकते हैं जहाँ हमे जीतने की आशा न हो, और जहाँ पर विरोधी उम्मीदवार रुपये के अलावा असेम्बली मे भी हमारा साथ देने का वायदा करे।" मेरा वह सौदा ठप्प हो गया। इसी तरह एक सौदा शाहजहाँपुर के ज़िले मे और किया, वह पन्तजी ने ठप्प करा दिया।

आपको 'कील' दे

मैं हताश न हुआ। लम्बा हाथ मारने की इच्छा से एक और ताल्लुकेदार की रियासत मे जल्से शुरू कर दिये। दो-तीन जल्से ही किये होगे कि ताल्लुकेदार साहब ने बुला लिया —खाने पर। भोजन मिला स्वादिष्ट और चाँदी के थाल-

पटोरी में। जब पान-तम्बाकू की नौबत आई तो राजा साहब ने दीवानखाने की ओर इशारा किया। बैठते ही बात-चीत शुरू हो गई। बोले—"त्यागी जी, आप आखिर मेरे पीछे क्यों पड़ गये हैं, मैंने आपका क्या बिगाड़ा है?" मैंने कहा—"राजा साहब, बिगाड़ा कुछ नहीं, आप तो ताल्लुकेदारों में सबसे अच्छे माने जाते हैं, पर हमारी मुश्किल यह है कि अंग्रेज के मुकाबिले में हमें अपना बहुमत बनाना है। इसलिये एक-एक सीट पर लड़ना जरूरी है।"

ताल्लुकेदार साहब ने पूछा—"अच्छा, सच बताओ, आपको यहाँ से जीतने की उम्मीद है?" मैंने कहा—"कतई नहीं, पर हम यहाँ जीतने के लिए थोड़े ही लड़ रहे हैं। हम तो इस-लिए लड़ रहे हैं कि आपको यहाँ 'कील' दें। अगर आपको यहाँ 'कील' न दे सके तो आप हमें अपने ही जिले में नहीं, बल्कि और भी आसपास के जिलों में सतायेंगे।" उन्होंने कहा, "अगर आप लड़ेंगे, तो हमारा दो लाख से ज्यादा खर्च हो जायगा। फर्ज़ कीजिये, मैं आप ही का साथ दे दूं, असेम्बली में जाकर?" मैंने कहा—"फिर क्या बात है, लिखकर दे दीजिये।" राजा साहब बोले—"लिखकर कैसे दे दें? ताल्लुके-दार हैं, हमारी सनद जो ज़ब्त हो जायगी।" मैंने कहा—"तो हम आपकी जबान को ही दस्तावेज समझते हैं, बस हो चुकी बात। पर कुछ सहायता भी तो करो कांग्रेस की। बयाने के रूप में कुछ दो, ताकि हम दस्तावेज की रजिस्ट्री करा सकें लखनऊ के दफ़्तर में।" वह बोले—"आप जो कहें।" मैंने कहा—"आप जब कांग्रेस में आ गये तो मेरे बताने का क्या सवाल।

जितनी आपकी श्रद्धा हो दे दो।" राजा साहब ने लम्बी साँस लेकर कहा—"तो त्यागी जी, मैं बीस हजार दे सकता हूँ।"

—बीस हजार ! बीस हजार सुनकर तो मेरे फरिश्ते तर गये ! मैं तो केवल ६ या १० हजार की आशा से आया था। फिर भी अपने रिवाज के अनुसार मैंने कहा—"है तो कम, पर जब आपपर छोड ही चुका, तो जो आप कहे मजूर है।"

दिल मे लालच आया कि मोटा आसामी है, कुछ और बढाओ। नीची-सी गर्दन कर मैंने कहा—"कुछ दक्षिणा के रूप मे इस ब्राह्मण को भी मिले, बीबी चुनाव लड रही है देहरादून से।" शरीफ आदमी थे और फिर ठाकुर, एकदम जोश मे खडे हो गये और छाती ठोककर बोले—"बस अब ठाकुर की परीक्षा हो जाय। बहनजी के चुनाव को मैं अपना चुनाव समझता हूँ। कितने रुपये की जरूरत होगी ? अपने मुँह से बताइये, शर्माइये नही। पहिले आपने मुझपर छोडा था, मैंने जो कहा आपने मजूर कर लिया। अब मैं आपपर छोडता हूँ, आप जो कहेगे मुझे मजूर है।" अपने नाम से माँग रहा था, मुझे सचमुच कुछ शर्म आ गयी। आदत माँगने की थी नही, मैंने 'दो हजार' कह दिया। बोले—"बस ? दो नही, तीन।" मैंने कहा—"तो २३ हजार का एक ही चैक काट दें ? अगले दिन चैक रफी अहमद किदवई को सुपर्द कर, मैं देहरादून लौट आया।

चोरी पकडी गयी

महीने-बीस दिन बाद कुछ ऐसा हुआ कि पालियामेंटरी

बोर्ड की बैठक इलाहाबाद बुलाई गयी। हम लोग आनन्द-भवन के गोल कमरे में इकट्ठे हुए। श्री जवाहरलाल नेहरू जरा देर से आये। कमरे में घुसते ही बोले—"रफी, मेहरबानी कर त्यागी को कमरे से बाहर निकाल दीजिये, जिस मीटिंग में यह बैठेंगे, उसमें मैं नहीं बैठ सकता।" मैंने उनको मुंह चिढाते हुए जरा जोर से कहा—"अमाँ, भाँग पी रक्खी है ? रफी साहब, जरा इनसे कहिये कि वापिस चले जायें। एक तो पन्द्रह मिनट देर करके आये, और फिर उसपर यह मिजाज ?" सब लोग हँस पड़े, लेकिन जवाहरलालजी जोर से बोले—"अभी आपको मजा चखाता हूँ।"

उन्होंने अपने चमड़े के थैले से एक पत्र निकालकर रफी साहब के हाथ मे दे दिया, "हजरत काग्रेस के झंडे बेचते फिरते हैं।" उस खत के लिफाफे को देखकर मैं भाँप गया कि उन्हीं-का है, जिनसे चन्दा लाया था। मेरा माथा ठनका कि आयी कोई आफत। अभी पता नही था कि खत मे क्या है, पर रफी साहब ने जो पढकर यह कह दिया कि 'मुझे इसकी कोई इत्तिला नहीं,' इससे मेरी चिन्ता बढ गयी। फिर वह पत्र जोर से पढा गया। सार यह था कि त्यागीजी यहाँ आये थे, मुझसे कुछ बातचीत की और २० हजार रुपये इस वायदे पर ले गये कि हमारे मुकाबले पर काग्रेसी उम्मेदवार खडा न होगा। अब लोग कहते हैं कि कोई साहब काग्रेस की तरफ से खडे हो रहे हैं। मैं आपसे अपील करता हूँ कि यदि उस फैसले पर काग्रेस कायम नही है, तो कम से कम मेरा बीस हजार रुपया तो वापिस करा दिया जाय। शरीफ आदमी थे, बीस हजार का

ही जिक्र किया, उन तीन का नही जो मुझे दिये थे ।

मित्र की परीक्षा

मैंने जो यह मजमून सुना, तो पन्तजी के कान में कहा—"देखिये, रफी का यह जवाब उचित नही था ।" पन्तजी मेरे बराबर बैठे हुए थे । उन्होंने चुपके से (मुंह पर अखबार ढककर) कहा—"महावीर ! इस मामले मे किसी भी दूसरे का नाम लेना ठीक न होगा ।" मैंने कहा—"पन्तजी, २३ हजार रुपये की चोट मैं अकेला कैसे बर्दाश्त करूँगा, गरीब आदमी हूँ !" इसपर पन्तजी ने एक ऐसी ऊँची बात कह दी कि जो उम्र भर के लिये मेरे चरित्र का हिस्सा बन गयी ।

पन्तजी ने कहा—"महावीर, देखो, दो मित्रो के बीच मे परीक्षा का समय जीवन मे केवल एक ही बार आता है ।"

पन्तजी के शब्द मेरे दिल को पार कर गये । उनका मनन करने लगा । इतने मे जवाहरलालजी ने पूछा—"कहिये जनाब, आप रुपया लाये थे ?"

—जी लाया था ।

—कहाँ गया वह रुपया ?

—क्या बताऊँ, मै बहुत शर्मिन्दा हूँ ! बरसो से अपनी जायदाद बेच-बेचकर खा रहा था और कर्जा बहुत चढ़ गया था । झूठ कैसे बोलूं ? बीबी चुनाव लड रही है, मेरी नीयत डिग गयी और मैंने रुपया अपने कर्जे मे दे दिया । आहिस्ता-आहिस्ता करके मैं सारा रुपया उतार दूंगा ।

मेरा उत्तर सुनना था कि बस, पार्लियामेंटरी बोर्ड की

निगाहें फिर गयी ! पल-भर मे मित्रो की घृणा का पात्र बन गया । सब हक्के-बक्के-से रह गये । उन्हें मुझसे ऐसी उम्मीद नही थी । असल मे अभी तक वे सब मुझे ईमानदार मानते थे, आज ईमानदारी ने धोखे का रूप ले लिया । कहाँ जवाहर लाल जैसा फरिश्ता और कहाँ मुझ जैसा जालिया । मैं उन पवित्र हस्तियो के बीच मे कलंक रूप प्रतीत होने लगा !

जवाहरलाल वैसे तो लाल-पीले हो गये, पर बहुत दुःखित हृदय के साथ धीमे से बोले—"अब तो इनको निकालिये ।" किदवई साहब ने अजीब ठडे ढंग से कह दिया—"त्यागीजी, अब आपको बाहर चले जाना चाहिए।" कैसा ठडा लोहा था वह, भट्टी मे डाल दो, लाल हो जायगा, पर निकलेगा ठडा !

शर्म का बोझ

खैर, मैं चल दिया । चप्पल पहन ही रहा था कि बहुत दु ख और दमन के साथ द्रवित स्वर मे जवाहरलालजी ने कहा—"याद रखिये या तो कल तक रुपया जमा कर दीजिये, वरना मैं अखबार मे छपवा दूंगा कि आप काग्रेस के नाम पर जाल-बट्टा करते फिरते हैं, रुपया माँगते हैं काग्रेस के नाम से और गबन करते हैं । सुनकर चला गया । कानो मे पन्तजी के यह शब्द गूंज रहे थे—"मित्रो के बीच मे परीक्षा का समय जीवन मे केवल एक ही बार आता है।" इरादा कर लिया कि दुनिया में काला मुँह भले ही हो जाय, पर रहस्य को अपने मुँह से न खोलूंगा । जाकर बैठ गया उसी बेंच पर जिसपर कभी 'भाई-जी' (प० मोतीलाल नेहरू) के वक्तो मे बैठा करता था । आंखो

के आगे अँधेरा छा गया। सोचने लगा, दोस्त भी छूटे, घर भी छूटा, अब जाऊँ तो कहाँ जाऊँ? संगम में डूब मरूँ? अगर घर गया तो कल तक रेल के कुली भी पढ चुकेंगे कि यह ढोंगी लीडर था उनका। पर जितनी जितनी परेशानियाँ दिमाग में आयी, उतना ही इरादा पक्का होता गया—चाहे कुछ भी हो, इस रहस्य को अपने मुँह से न कहूँगा। पन्तजी कहें तो कहें, त्यागी मुँह न खोलेगा।

थोडी देर म क्या देखा कि पार्लियामेंटरी बोर्ड की बैठक खत्म हो गयी और एक एक करके सब सदस्य सीढी से नीचे उतरकर चाय के कमरे की ओर जाने लगे। केवल केशवदेव मालवीय, जिन्हे सब हाल मालूम था, मेरी तरफ चले आये। जैसे ही उन्होने मुझे आवाज दी, मैं रो पडा—"केशव, इतने दिनो का साथ किस बेहयाई से छूटा! अब तुमसे बात करना तो दरकिनार, मैं तुम्हारे पास तक न फटक पाऊँगा। दुनिया मुझपर थूकेगी। सब मित्र छूट गये। केशव, पर कुछ भी हो, अपनी जबान से रहस्य को न बताऊँगा।"

मुनीम की पेशी

केशवजी ने कहा— पागल हो गये हो? वहाँ तो मजा आ गया। तुम्हे कुछ पता भी है?" उन्होने बताया कि मेरे बाहर चले आने के बाद पन्तजी ने रफी अहमद किदवई से पूछा—भाई, मेरे पास तुमने पच्चीस सौ रुपया भेजा था, मेरा ख्याल है कि महावीर रुपया जरूर लाये होगे। इसपर जवाहरलालजी बौखला उठे और बोले, फिजूल की बात है,

वो खुद अपने मुंह से कह गये कि रुपया कर्ज में दे दिया। पन्तजी ने कहा—फिर भी पूछने में क्या हर्ज है ? एकाउटेंट (मुनीम) को बुलाओ। नीचे से मुनीम बुलाये गये। पन्तजी ने उनसे पूछा कि—मेरे पास जो रुपया तुमने भेजा था, कहाँ से आया था ? उन्होंने कहा—त्यागीजी जो २३ हज़ार रुपया लाये थे, उसीमें से भेजा था।

श्री बालकृष्ण शर्मा से बर्दाश्त न हुआ। उन्हे गुस्सा आ गया। जवाहरलालजी को बहुत कुछ कह डाला। कहा—आयन्दा से कभी कोई मीटिंग किसीके घर पर नहीं होगी। कांग्रेस के दफ्तर में मीटिंग होनी चाहिये। क्या अख्तियार था इन्हें यह कहने का कि त्यागी को बाहर निकालो ? कौन माई का लाल है जो इस तरह से अपने ऊपर बदनामी ओढकर चला जाये। यह अकेले का काम नही, इसमें सब शरीक हैं। श्री बालकृष्ण शर्मा भी हमारे बीच फरिश्ते के रूप में रहते थे, जब गुस्सा आता था, सब कुछ कह डालते थे।

अपनी सफाई देते हुए जवाहरलाल बोले—तुम मुझपर गुस्सा करते हो, उन्हे कुछ नही कहते जो ड्रामा करके चले गये। सबकी राय हुई कि अब उसे बुलाया जाय। और चाय के लिए उठ गये। बुलाए कौन ? मेरे मित्र केशवदेव मालवीय को कहा गया कि तुम बुला लाओ। केशवजी ने जो यह किस्सा सुनाया तो इससे मेरे मन पर क्या-क्या असर पडा, यह बता नही सकता। तसल्ली हुई, गम दूर हुआ, मोहब्बत उमड आयी, नखरे की तबीयत हुई, मचलने को जी चाहा।

मैंने कहा—"केशव, चाहे कुछ भी हो, पर अब चाय न पी

सकूँगा। तुम जवाहरलालजी से जाकर कह दो कि वह कहता है कि उसके हिस्से में आनन्द-भवन की जितनी चाय बदी थी—भाईजी के वक्तों में वह पी चुका, घोड़े मर गये, गधों का राज आ गया। जिनको उन दिनों नही मिली थी, वह अपने हिस्से की पियें, मेरा तो 'आवदाना' आनन्द-भवन से उठ गया।" केशव ने कहा—"ऐसे ही कह दूँ?" मैंने कहा—"हाँ, बिलकुल।"

केशव गये और मेरी बात दोहरा दी। सब लोग बहुत हँसे, पर अकेली माता स्वरूपरानी, जो चाय बना रही थी, नही हँसी। उनको यह सुनकर दुःख हुआ। बहन विजयलक्ष्मी को कहला भेजा—उन (मोतीलालजी) के समय के चाय पीने-वाला को आनन्द-भवन मे चाय न मिले?

अम्मा का बुलावा

विजयलक्ष्मी आयी—अम्मा बुला रही हैं। मैं पीछे पीछे हो लिया।

अब सुनिये हमारे लीडर की बात जिसने अपने जीवन मे माफी तो किसीसे माँगी न होगी, सिवाय इसके कि चलते हुए धक्का लग जाने पर कह दिया हो, 'माफ कीजिये।" पर उसे माफी की जरूरत भी क्या है? हृदय स्वच्छ, पुण्यात्मा, द्वेषरहित, निर्दोष जीवन, माशूक आदमी है। मेरे कमरे मे दाखिल होते ही बड़े अन्दाज से मुस्कराते हुए बोले—'प्याले से क्या होगा। अम्मा, बाल्टी मँगाओ। देखती नही हो, घोड़े आ गये।"

यह कहना था कि सब लोग ठहाका मारकर हँस पड़े।

चाहिये। गाधीजी की अनुपस्थिति में इसे भुठलाना ठीक न होगा। यदि एक बार यह शस्त्र फेल हो गया तो फिर क्या करेंगे ? पर श्री केशवदेव मालवीय, सरदार नर्मदाप्रसाद सिंह, प० कृष्णकान्त मालवीय और सर्वश्री वेंकटेशनारायण तिवारी, पुरुषोत्तमदास टडन आदि इलाहाबादियो ने आफत मचा रखी थी—"हम हजारो वालटियर देंगे और आन्दोलन जोरो से चलेगा।" ऐसा लगता था कि इनकी हडिया पक चुकी है, फलस्वरूप सारा प्रान्त मार्चबन्दी की ओर झुक गया। उन दिनो रिवाज यह था कि जो भी साथी तेज-तेज बातें करता, सब लोग उसीकी ओर अपना हाथ उठाते और जो धीमे स्वर से बोलता वह 'टोडी बच्चा' कहलाता था। लगान-बन्दी के मामले मे बनारस के स्वर्गीय बा० शिवप्रसाद गुप्त और मैं विरोधी थे। हमने भी इधर-उधर घूमकर विरोधी प्रचार शुरू कर दिया कि यह इलाहाबादी लीडर डेढ चावल की खिचडी अपनी हडिया म अलग पकाना चाहते है। अग्रजो के खिलाफ विद्रोह का ऐसा वातावरण छाया हुआ था कि हमारी तनिक भी दाल न गली। अन्त मे हमारे साथ यह समझौता हो गया कि हम दोना कोई विरोध न करें और तटस्थ रह जायें। छेदीलाल धर्मशाला मे प्रान्तीय काग्रेस कमेटी की बैठक हुई। हजारो विद्यार्थी दर्शक के रूप मे आये। जैसे आजकल सिनेमा-स्टार के पीछे लडके टूट पडते हैं उन दिनो इसी तरह दुनिया जवाहरलालजी पर फिदा थी। सँपेरो की तरह जिधर भी ये बीन बजाते हैं, उधर ही हजारो नौजवान सँपोलियो की भाँति घरो से निकल

पडते हैं और जवाहरलाल की बीन पर नाचने लगते हैं। यह जवाहरलाल का यौवन-काल था।

जब लगान-बन्दी के प्रस्ताव पर ७ या ८ भाषण हो चुके तो मैंने 'वहस-बन्दी' (क्लोज़र) का प्रस्ताव रख दिया। उस समय शेरवानी साहब चले गये थे और जवाहरलाल सभापति की सीट पर बैठे थे। उन्होने कहा, "मैं इस प्रस्ताव को स्वीकार नही करता।" मैं विधान की किताब लेकर जवाहरलालजी के पास पहुँचा और दिखा रहा था कि बहस-बन्दी के प्रस्ताव पर वोट लेना आवश्यक है। ये बैरिस्टरी पास और लीडर, मेरे हाथ से किताब छीनकर ऐसे फेंक दी जैसे कि दर्जा ४ मे मास्टर मकसूद हसन ने स्लेट फेंकी थी और चिल्लाकर अग्रेजी में बोले—"अपनी जगह पर जाओ, वरना सभा से बाहर निकाल दूंगा।" मैं पिटा हुआ-सा अपनी जगह आ बैठा। फिर टंडनजी का भाषण शुरू हो गया। मैं अपना-सा मुंह लिये अन्दर ही अन्दर सुलगता रहा। इतने मे मेरी निगाह कमला भाभी और शर्मदा पर जा पडी। यह दोनो भी जेल मे साथ-साथ रह चुकी थी। मुझे ऐसा लगा कि मेरे अपमान से शर्मदा कुछ मुर्झायी-सी पड गयी है। बस, बदले की भावना भडक उठी। टंडनजी के बैठते ही मैंने वैधानिक आपत्ति (पाइंट आफ आर्डर) का प्रश्न उठा दिया। मेरी आकृति से जवाहरलाल समझ गये कि मैं झगडे पर उतारू हूँ, बोले—"क्या आप मेरे व्यवहार (कनडक्ट) पर बहस करना चाहते हैं?" मैंने कहा—"जी हां।" बस कुर्सी छोड़कर खड़े हो गये और टंडनजी से बोले—"चूंकि मैं बहस

मुझे भी हँसी आ गयी। यह मोहब्बत और यह मज़ाक ! हज़ार बार कुरबान जाऊँ इस अदा पर ! उस बूढ़े का पुराना आशिक़, मेरा सारा प्यार उमड़ पड़ा। बोला—"बस रहने दो अपनी आल्टी-बाल्टी, आपने तो निकाल ही दिया था।"

—"यह कौन है निकालने वाला, अभी तो मैं बैठी हूँ, आनन्द-भवन मेरा है, जवाहरलाल तो किरायेदार है।" कहते हुए अम्मा ने मीठे गुस्से से जवाहर की ओर देखा और प्याला मेरी ओर बढ़ा दिया।

चार

तेज़ मिज़ाजी

महात्मा गांधी तो गोलमेज कान्फ्रेंस में लन्दन गये हुए थे और जवाहरलाल नेहरू दोबारा कांग्रेस के प्रधान चुने जा चुके थे। नमक सत्याग्रह खतम हो चुका था और गेहूँ भूसे के भाव दो रुपये मन बिक रहा था। किसानों को अपना लगान अदा करना मुश्किल पड़ रहा था। पंडित मोतीलाल नेहरू का स्वर्गवास हो चुका था और जवाहरलाल के सिर मे खाज उठ रही थी कि कुछ करें। श्री पुरुषोत्तम दास टंडन की सहायता से इन्होंने इलाहाबाद मे, कोई 'हंडिया' नाम की तहसील है, उसके कुछ किसानों को लगान-बन्दी के लिये तैयार कर लिया था। यू०पी० प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की बैठक लखनऊ में बुलाई गयी। अलीगढ के स्वर्गीय तसद्दुक अहमदखाँ शेरवानी हमारे प्रान्तपति थे। प्रान्त के अधिकाश सदस्य एक-दो दिन पहले ही लखनऊ पहुँच चुके थे। इलाहाबाद के सभी कर्यकर्ता लीडरी का दम भरते थे, दूसरा नम्बर था लखनऊवालों का और बाकी जिलों की गिनती लीडरों मे नही थी।

हमारा कहना यह था कि लगान-बन्दी गांधीजी का अन्तिम शस्त्र है। इसको आखिरी मोर्चे के लिये सुर[illegible] रखना

का विषय बन गया हूँ इसलिये आप सभापति के आसन पर आ जायें।" टंडनजी वह लीडर थे कि जो अभी तक नीम की दातुन करते थे। इन बेचारो को अपने कपड़ो की तो क्या, आत्मा तक की सुधि नही कि कब, कहाँ और किस रास्ते से वह जाये। अभी हजारो व्यक्ति जिन्दा हैं कि जिन्होंने उनकी पवित्र आत्मा से त्याग और तपस्या की प्रेरणा पायी है। इनके कुर्सी सँभालते ही मैंने निवेदन किया कि "आपसे पहले जो सज्जन सभापतित्व कर रहे थे उन्होंने किताब फेंककर जो अनैतिक व्यवहार किया है, उससे अध्यक्षता के आसन की बड़ी मानहानि हुई है। इनसे कहा जाये कि ये सभा से क्षमा-याचना करें।" जवाहरलालजी ने तड़क-कर कहा—"सुनिये, मैं बताना चाहता हूँ," मैंने टंडनजी से कहा—"इन्हें रोकिये, इन्हें मुझसे सीधे बात करने का कोई अधिकार नही है। ये जो कहना चाहते हैं वह अध्यक्ष के द्वारा कह सकते है।" जवाहरलालजी बोले—'मैं तुम्ही से कहूँगा, तुमको सुनना पड़ेगा, आप मुझे किताब दिखाते हैं और सभा सचालन का सबक पढ़ाते हैं। मेरे हाथ मे किताब थी, यदि कोई भारी चीज़ होती तो उसे खेंच मारता।" अब मैं भी आपे से बाहर हो गया, बदतमीज़ी पर उतर आया। न जाने क्या कह गया, "यदि आप भारी चीज खेंच मारते तो मैं   कि मुँह लाल हो जाता।" आदि-आदि। बस भरी सभा मे शोर मच गया, 'बैठ जाओ, बैठ जाओ, माफी माँगो, अपने शब्द वापस लो।' मैंने कहा, "जब तक यह इलाहाबादी   , जो मुझपर छोड

दिये गये हैं, चुप न किये जायेंगे मैं नहीं बैठूंगा। और यदि आप लोगों का यही व्यवहार मेरे साथ रहा तो मैं अपनी जिला कांग्रेस कमेटी का आपकी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी से सम्बन्ध-विच्छेद (डिस-एफीलिएट) कर लूँगा।" टंडनजी ने रूलिंग दे दी, "त्यागीजी ने जो थप्पड़वाली बात कही है वह सभ्यता के दायरे से तजावुज़ कर गयी है, इसलिये मैं त्यागीजी से अनुरोध करूँगा कि पहले वह अपने उस वाक्य को वापिस ले लें।" मैंने फ़ौरन यह कहकर वापिस ले लिया कि "मैं आपकी आज्ञानुसार अपने उस वाक्य को वापिस लेता हूँ, परन्तु बिना कोई शब्द कहे मेरी ओर से श्री जवाहरलाल नेहरू का उतना ही अपमान हुआ समझा जाये कि जितना उन्होंने मेरा किया है।" लोग चिल्ला पड़े, "यह शर्त स्वीकार नहीं है, बैठ जाओ।" मैंने बैठने से मना कर दिया तो जवाहरलालजी उठे और बोले :

"त्यागी और मैं बहुत पुराने मित्र हैं, पर हम दोनों एक-दूसरे से ज्यादा तेज मिज़ाज वाके हुए हैं, हममें से न कोई एक-दूसरे से माफी माँग सकता है और न माफ़ करेगा। हमें आप हमारे हाल पर छोड़ दें, बाहर जाकर हम दोनों अपना झगड़ा चुका लेंगे। और चूँकि हमने हाउस का बहुत समय ले लिया है, मैं दोनो की ओर से क्षमा चाहता हूँ। त्यागी, अब तुम मेरी ताईद करो।"

मैं हक्का-बक्का-सा रह गया, मानो अपने हाथ से अपने मुंह को थपड़ा लिया हो। इस जादूगर का मुकाबला मुश्किल था। फिर भी बड़ी नम्रतापूर्वक जवाहरलालजी से और

सब सभासदो से क्षमा मांगते हुए मैंने स्वीकार किया कि "जवाहरलालजी ने शूरता मे तो परास्त किया ही था, शराफत मे भी मुझे जमीन मे गाड दिया।"

फिर जवाहरलालजी कुर्सी पर बैठ गये और बहस को खतम करते हुए लगान-बन्दी के प्रस्ताव पर वोट लिये। अकेले मेरा हाथ ही विरोध मे उठा। जवाहरलालजी ने घोषणा कर दी कि प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ। मैंने अभी अपना हाथ नीचे नही गिराया था। विनम्रतापूर्वक मैंने जवाहरलालजी का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा, "अभी तो मेरा हाथ खडा है।" हँसकर जवाहरलालजी ने कहा, "अच्छा तो लिख लिया जाये कि सिवाय त्यागी के बाकी सारा प्रान्त सहमत है।" मैंने कहा—"ठीक है, कम से कम यह कहने को रह जायेगा कि प्रान्त में एक व्यक्ति था जिसने अपना सिर कन्धो पर स्थित रखा।"

सभा विसर्जित होने के बाद भीड मे जवाहरलालजी ने पीछे से आकर मेरी कमर मे हँसते हुए एक घूंसा मारा और कहने लगे—"तुम अपनी शरारत से बाज़ नही आये।"

लगान-बन्दी का प्रस्ताव पास होते ही तमाम प्रान्त मे फिर जोरो के साथ पकड-धकड शुरू हो गई। हज़ारो किसानो ने लगान देने से मना कर दिया और उनके घर-बार, बर्तन-भाण्डे और गाय-बैल नीलाम होने लगे। किसीको ६ महीने की तो किसीको साल-दो साल की सज़ायें होने लगी, जुर्माने हुए और कुडकियां होने लगी। नीलामी मे या तो कोई बोली बोलनेवाले न मिले, या मिले भी तो केवल इसलिए कि

थोड़ी-बहुत बोली बोलकर सामान को सुरक्षित कर लिया जाय और जेल जानेवालों के बाल-बच्चों को कोई कष्ट न पहुँचे। जगह-जगह सहायक समितियों की स्थापना हो गई और जेलों में चिट्ठी आने लगी कि "बाल-बच्चों की फ़िक्र मत करना।"

फिर कुछ महीनों के बाद आन्दोलन ढीला पड़ गया। वालंटियर भी मिलने बन्द हो गए। अंग्रेजों ने यह देखकर कि अब वातावरण शान्त होने लगा है अपनी दमन नीति धीमी कर दी। अहिस्ता-अहिस्ता जेलो से रिहाई भी होने लगी। जवाहरलालजी पहिले छूट आए थे, मेरे छूटने में तीन-चार दिन की देर थी, कि मुझे जेल ही मे सूचना मिली कि छूटने पर लखनऊ होता हुआ जवाहरलालजी से मिलकर जाऊँ। जब मैं लखनऊ पहुँचा तो जवाहरलालजी ने बड़े चाव से आवभगत की और चाय पिलाई। इन दिनों इन्हें 'समाज-वाद' की धुन थी। लगातार 'मार्क्स' और 'एँजिल' का ज़िक्र करते रहे और कहने लगे कि हमको जगह-जगह कार्यकर्ताओं के शिक्षण-कैम्प करने चाहियें और लोगों को समझाना चाहिए कि समाजवाद के सिवाय भारत के लिए दूसरा चारा नही है। फिर लगान-बन्दी के आन्दोलन के ढीले पड़ने पर बात होने लगी तो मैंने कहा, "जेल मे एक शेर लिखा था सो अर्ज़ करता हूँ :

"देख लो आखिर वह मुँह की खा गये सरकार से,
चन्द अन्धे चल पड़े थे, लगके जो दीवार से।
इनक़लाबी नारे बोले, और मिटाई अपनी झेंप,
वर्ना था मुश्किल निकलना, शहर मे बाज़ार से।"

जवाहरलालजी ने चाय पर गुड़ और सिंगाड़े खिलाए, मैंने कहा, "यह तो जेल में भी मिल सकता था। हमें उम्मीद थी कि कुछ रसगुल्ला आदि मिलेगा।"

पांच

हमारा तो यह हाल है

तुम्हे काहे का शौक है? मुझे तो अपनी तारीफ सुनने का है। पर हर बात की नही, अपने चरित्र अर्थात् ईमानदारी और निर्भीकता की तारीफ। और अपनी तुरत बुद्धि की चर्चा मुझे सबसे प्रिय है। फिर, मैंने अपने मकान 'रैनबसेरे' के सामने जो खिडकियाँ लगवायी हैं उनसे 'रैनबसेरे' की शोभा बढी है, ऐसी बात भी बडे चाव से सुनता हूँ। पहिले अपने भाषणो की चर्चा भी अच्छी लगती थी और अख़बारो मे अपना फोटो छपा देखकर भी बहुत खुश होता था। पर अब कुछ दिनो से रेडियो पर दिन-रात मिनिस्टरो के भाषण सुनकर, और आये दिन नेहरूजी की तरह-तरह की अदाओ के फोटो छपे देखकर मेरे वे दोनो शौक फीके पड गये हैं। अब मुझे भाषणो मे दवा-फरोशी की भनक और तस्वीरो मे नटीत्व की झलक आने लगी है। मेरे लिए यह साहित्य अब बहुत उथला, हल्का और सस्ता साहित्य हो गया है, पर अपनी प्रशसा सुनने का शौक इन दिनो बहुत तेज़ी पर है। बहुत कम लोग ऐसे मिलते हैं जो सचमुच तारीफ करते हो—झूठी भी सही, पर लगती अच्छी है। जिन लोगो को मुझसे काम पडता है वे तो बहुधा कुछ न कुछ

तारीफ करते ही हैं, पर जब किसीको यह फीस देनी याद नही रहती तो मैं बहुत होशियारी से कुछ इधर-उधर की ऐसी बातें छेड देता हूँ कि ये लोग कुछ हूँ-हाँ करें। यदि कोई निपट बुद्धू ही पल्ले पड जाय तो फिर अपने ही मुंह से अपनी तारीफ करके शौक पूरा कर लेता हूँ। पहिले तो अपनी तारीफ करने मे कुछ मिर्च-मसाला भी जोड दिया करता था। अब यह काम कुछ हल्का कर दिया है। पर पिछली कही हुई बातो मे जो अतिशयोक्तियाँ की थी उन्हें क्षेपक न मानकर मूलाध्याय बना लिया है। कई बार इरादा भी किया कि अपनी रामायण को क्षेपक-रहित कर लूं, पर चोरी के माल का वापस करना चोरी के आदर्शों के विरुद्ध और कठिन कार्य है। इसके अलावा बहुत-सी बातो मे क्षेपक इतने पुराने पड गये हैं कि मुझे भी याद नही रहा कि कौन क्षेपक है और कौन मूल। फिर यह क्षेपक मूल सत्य मे खप इतने गये हैं कि इनके निकालने से घटनाएँ कला, कवित्व और कल्पनारहित होकर न तो कहने लायक रहगी, न सुनने लायक, और न टिकाऊ। कथाएँ पुरानी भी पड गयी हैं। इसलिए सच्चाई की राह पर चलते हुए यही कर सकता हूँ कि उन्हें दोहराऊँ नही। पर जब कुछ और बात न मिली तो उन्ही पुरानी बातो को सुनाकर अपना शौक़ पूरा कर लेता हूँ।

एक आदत और पड गई है। वह यह कि मेरा जी चाहता है, जिस किसीसे भी मिलूँ उसपर अपनी बुद्धि और पाडित्य की छाप लगा दूँ। बस उसीकी नई-नई बातो को अपने शब्दो की चोलियाँ चढाकर लग जाता हूँ बाद विवाद करने। इस वाद-

विवाद द्वारा उन्ही नये-नये विचारो को उलट-पलटकर अपना बना लेता हूँ, और तरह-तरह के विचार-क्षेत्र सामने आ जाते हैं। जी भर के इन क्षेत्रो की सैर करता हूँ। और इसी तरह यदि कोई नई किताब या पत्रिका पल्ले पड जाये तो उसे भी ध्यान से पढ लेता हूँ। इस प्रकार दिन मे कई बार मानसिक व्यायाम हो जाता है। फिर क्या है, उन्ही सुनी व पढी हुई नई-नई बातो पर अपनी कलम चढाकर लग जाता हूँ धाक बैठाने, हर उस साथी पर कि जिसके हाथ मे हो वोट, और जिसका है कुछ भी असर जनता पर। कस-कस के जमाता हूँ रोब अपनी योग्यता का उसपर। यही है मूलाधार मेरी छोटी-सी लीडरी का। जैसे आम दो तरह के होते हैं—एक कटहा और एक कलमी, इसी तरह लीडर भी दो तरह के होते हैं—कटहा और कलमी। वास्तव मे तो मैं भी एक कलमी लीडर हूँ, पर राजनैतिक मडी मे तुखमी के दाम अच्छे उठ रहे हैं। इसलिए तुख़मी बनने का प्रयत्न ही लीडरी का मुख्य उद्देश्य हो चला है।

अतीत की स्मृति

मालूम नही इस व्यसन के बीज मेरे मन के उपजाऊ खेत मे पहिले-पहिल किसने और कब बोये थे। अपनी अतीत-स्मृति के धुंधले-से क्षितिज मे अन्तरनेत्री (दूरबीन) लगाकर देख लिया, पर कलम चढानी किसने सिखाई इसका पता न चला। हां, खुशामद का पहला प्याला किसने पिलाया था—इसके अते-पते कुछ मिलते हैं। ५५ वर्ष दूर मुझे कुछ भुटपुटी-सी याद

पडती है कि जब मैं चारपाई से गिर पडा तो मेरी बडी बहिन, जो माँ के मरने पर दिन-रात मुझे गोदी लिए फिरती थी, लपकी और मुझे उठाकर मेरे घुटने को रोलती, फूंक मारती हुई मेरे मुँह को चूम-चूम कहती, "मेरा भइया कैमा बहादुर है, इसे चोट नही लगती। मेरे बीरन, मैं इस खाट को मारूँगी।" और खाट को चपत लगाकर कहती, "खबरदार जो भैया को गिराया।" जितना ही वह मुझे मनाती गई उतना मैं रोता गया। फिर बहिन के निहारे सुनता-सुनता सो गया। आँख खुली तो फिर निहोरे याद आ गये। मुझे वे प्रेम-भरे निहोरे ऐसे पसन्द आ गये थे कि फिर रोने लगा। बहिन ने गोदी उठा लिया—"हो, हो मेरे भैया को किसने मारा?" मैंने कहा, 'खाट।" बस वह लगी खाट को पीटने। जब कभी खुशामद को जी चाहा तो रो दिया—"खाट मार।" फिर क्या था आई खाट की आफत। सोते-जागते, खाते-पीते हर समय खुशामद ही खुशामद। "चाद मामा आरे आव, वारे आव, नदिया किनारे आव। सोने के कटोरा मे दूध-भात लेले आव। भैया के मुँहवा मे घुट्ट।" 'ओ सहनाववतु सह नौभुनक्तु' की जगह हर गस्से पर यही मत्र पढा जाता था। यदि बहिन कभी भूल जाय तो मैं उसके कपडे नोच और हाथ-पैर पीटकर कहता "चदा मामा घुट्ट।" बस बहिन फिर मेरे कुरान की 'हदीसें'—'दूध भात' पढती और घुट्ट कहते ही मैं मुँह खोल देता। ऐसे नखरो से खानेवाला, मैं महावीर त्यागी, आज अपने रसोइया से माँग-माँग खाता हूँ और कोई अब 'घुट्ट' भी नही कहता। आर्य-समाजी कहते हैं कि अहकार छोडो और बिना चापलूसी के

असर में आये न्याय से काम लो। महात्मा गांधी कहते हैं कि अनासक्ति से काम लो। भला ५५ वर्ष की पुरानी आदत, गरीबी का सहारा, दुनिया भर के तिरस्कार और निराशा की काट, ईर्ष्या और द्वेष की भभकती-दहकती आग की शांति, जीवन की आकाश-बेल, खुशामद की आदत को कैसे छोड़ दूँ।

स्त्री परमात्मा ने ले ली, मिनिस्ट्री पंत ने, और छड़ी को चुरा ले गये अलगूराय शास्त्री। अब मेरे पास धरा ही क्या है कि जिसपर नाज करूँ। बाजारवाले, जो पहले दूकान पर बुलाकर बीड़ी-सिगरेट की बात पूछ लेते थे, अब नाराज है, सेल टैक्स के कारण। मुहल्लेवालों का शुबहा है कि मैं मिल गया हूँ चीनीवालों से। गरज कि शहर में निकलने को जी नही चाहता, क्योंकि न तो दुकानदार पहिले की तरह खड़े होते है, और न नमस्कार करते हैं। पहिले दोनों ओर से नमस्तों का जवाब देता, लचकता, मचलता, सिर झुकाता और दोनों हथेली दिखाता आशीष देता चलता था। उसी बाजार में अजनबी-सा चलूँ? बिना बुलाये दुकानों पर जाऊँ? और वे सौदा तोलें और मैं खड़ा रहूँ? अपने शहर का सुल्तान मैं कौन गली से निकलूँ? मोटर मे झपक से खिसक जाता हूँ। बात असल में यह है कि जहाँ शहरवाले मेरी खुशामद करते थे, वहाँ मैं भी उनकी शादी-गमी में शरीक होता और उनकी आवभगत करता था। अब जब वह मेरे घर आते है तो मैं रुखाई से बातें करता हूँ। अव्वल तो पार्लियामेंट से मुफ़्त का भत्ता खाते-खाते आँखों में चर्बी इतनी बढ़ गई है कि बहुत-से मित्रों को पहिचान

नही पाता और फिर हर पुराने मित्र से शर्माता-सा कहता हूँ—"क्षमा कीजिये, मैं आपका नाम भूल गया।" जिनका स्वागत इन शब्दो मे होगा वह भला दुबारा कभी मेरी तरफ को मुँह करेंगे ? शायद यही कारण है कि दुनिया ने मेरी ओर से मुँह मोड लिया है।

मैं चाहता हूँ कि मैं उनपर अपने बडेपन का रौब भी कसूँ और वह मेरी खुशामद भी करें। दोनो बात एक दूसरे से विपरीत, पर मुझे एक बात से तसल्ली नही, मैं तो दोनो लूँगा। क्यो न लूँ ? मैंने त्याग भी तो किया है। मेरे सिवाय दूसरे कांग्रेसी साथियो मे मुझे तरह-तरह की गिरावटें नजर आती हैं। पहिली बात तो यह है कि असेम्बली के मेम्बरो, मिनिस्टरो और बोर्डों के चेयरमैनो को छोडकर बाकी जितने भी कांग्रेसी हैं उनकी बाबत मेरी धारणा हो चली है कि यह सब अवसरवादी हैं, और ये लोग जेल वगैरह भी गये तो केवल इसलिए कि हम सर्वप्रिय हो जायगे तो हमारी पद प्राप्ति के मनसूबे सफल हो जायेंगे। इन्हे कोई पद तो मिला नही इसलिये कि वह न तो उसके योग्य थे और न अधिकारी। सब उद्विग्न हैं, और जिन्हें पद मिल गया है उनसे ईर्ष्या रखते हैं। ऐसे ऐसे अनुदार भाव अपने उन साथियो के विषय में मैं रखता हूँ जो हमारी खातिर बीसियो वर्ष तक अपनी जान हथेली पर धर और अपने बाल-बच्चो की अवहेलना किये दिन-रात हमारी जय बोलते-बोलते थकते नही थे, आज भी फूलमाला पहनाते हैं।

गांधीटोपीवालो का आदर तो हम सदैव से प्राप्त था

इसलिये उस आदर को घर की मुर्गी समझकर अब हमें हैट-कोट और पतलूनवालों से 'हुजूर' सुनने का नया शौक पैदा हो गया है। खद्दर की साड़ीवाली स्त्रियाँ भी 'भाईजी' कह-कहकर बात करती थीं, अब भी करती है। हम भी उन्हें बहिन या माईजी कहते है पर क्या बहिनों और माइयों के बीच मे ही सारी उम्र काट दूँ? आखिर हम नैतिकता के ढोंग से अपने देश को दो सदी पीछे ले जाना चाहते हैं, या एक सदी आगे? बस इस युक्ति को समझकर अब हमें लाल चोंच और खूनी पजों वाली (जिसके नाखून कटे न हों, पर चोटी कट गई हो और जो हमारी किसी बात का भी बुरा न माने बल्कि हँसती रहे ऐसी) नयी सभ्यता की सच्ची साध्वी से बातचीत करने मे सचमुच मजा आता है। इसलिये अब ऐसियो को ही बुलाते हैं चाय पर। और अग्रेज़ी मे करते हैं बात, ताकि शालीनता भी कायम रहे और बात भी हो जायें। वह मजा सितार मे नही जो कि चाय-चीनी-चम्मच की झंकार मे है। इसलिये छोड दी पहननी धोती। मेरा सदेह है कि धोती-कुर्ते से अग्रेज़ी शब्दो के उच्चारण मे फर्क पड़ जाता है। जाड़ों मे शेरवानी और गर्मियो मे बुश-शर्ट यह हो गई हैं ड्रेस हमारी—'कमखर्च बालानशीन।' पर है सब खद्दर की। अभी गाधी-जी को मरे दिन भी तो अधिक नही बीते। और अभी तो नैतिक सुधार मे ही लगा हूँ। जब देश के आर्थिक सुधार की योजना को हाथ मे लूंगा, तब विचार करूंगा कि वास्तव मे उन्नति किसमे है—खद्दर मे या जापानी सिल्क में।

छः

जब मोतीलाल भीख माँगने निकलेगा

मैं इन्कमटैक्स आदि की छान-बीन कमेटी के सिलसिले मे मसूरी क्या आया, कि पुरानी यादों ने पागल बना दिया। इत्तफाक से मेरे ठहरने का प्रबन्ध जिस मकान (श्री रूइयाजी के 'नारायण निवास') मे किया गया था, उसने फिर से पुराना उत्साह भडका दिया। यही ठहरे थे भाईजी (पं० मोतीलाल नेहरू), अपने अन्तिम समय मे। मैंने जवाहरलालजी को एक पत्र लिखकर यह घटना याद दिलायी, तो वे भी फडक उठे। उन्ही दिनो जवाहरलालजी भी जेल से छूटकर उनसे मिलने मसूरी आये थे। कमला भाभी भी साथ मे थी। उनके लौटने पर, मैंने अपनी बेवकूफी से एक जल्सा देहरादून मे रख लिया था। जल्से से पहले श्री उग्रसेन बैरिस्टर के घर पर चाय थी। मैं जल्से का सारा प्रबन्ध ठीक करके श्री उग्रसेन बैरिस्टर के घर गया, तो क्या देखता हूँ कि, कोतवाल-शहर मय दो-तीन कानिस्टेबिलो के वहाँ खड़े हैं। पूछने पर पता चला कि, कलक्टर ने दफा १४४ लगा दी है, जिसके नोटिस की तामील करने ये लोग तशरीफ लाये हैं।

सत्याग्रह-आन्दोलन ज़ोरो पर था और जवाहरलालजी काग्रेस के प्रधान थे। दफा १४४ को तोडकर जेल जाना काग्रेस-वालो के लिए अनिवार्य था। मुझे डर लगा कि इस फजीते का घडा मेरे गजे सिर पर फूटेगा। सारे काग्रेसवाले कहेगे कि, छोटे-से स्थानीय जल्से के लालच म तुमने जवाहरलाल को जेल भिजवा दिया। अभी किसीसे मिल भी न पाये थे, और अगले ही दिन इलाहाबाद म सूबे भर के किसान-कार्यकर्ताओ को परामर्श के लिए बुलवाया हुआ था।

मेरे तलवो के नीचे से धरती सरक गई। आव देखा न ताव—मैंने जल्दी से एक बाईसिकल उठायी और मसूरी की सडक पर अधाधुध धावा बोल दिया। आध मील दूर जवा-हरलालजी की मोटर मिली। मुझे देखते ही उन्होने मोटर रोक दी। मैंने साइकिल बराबर के दुकानदार के सुपुर्द की और जवाहरलालजी से कहा कि, दफा १४४ का नोटिस जारी हो गया है। माथे पर हाथ मारकर बोले—"तुमने गजब कर दिया। मेरा सारा प्रोग्राम खराब हो गया। बस कमला, तुम पापा की देखभाल करना। मैं तो चला। आई एम डन।" मैंने कहा—"एक तरकीब हो सकती है।" बोले—"अब क्या खाक तरकीब हो सकती है। आपकी हिमाकत का नतीजा है।" मैंने कहा—"कोतवाल तो ला० उग्रसेन के घर इन्तज़ार कर रहा है। आप सीधे मीटिंग मे चले चलिए, बस दो शब्द कहकर जल्सा खत्म कर देगे।" बोले—"यह ठीक है, जल्दी मोटर म बैठो।"

हम तीनो सीधे जल्से मे पहुँचे। मैं बिना किसी प्रस्ताव

के जल्से का अध्यक्ष बन गया और उन्होने मेज पर खड़े होकर अपना भाषण आरम्भ कर दिया। निश्चय हुआ था कि, दो टूक बात कर जल्सा खत्म कर देंगे। पर यह हज़रत तो भीड़ के आदिम ठहरे, बोलते ही चले गये। मेरा ध्यान तो फाटक पर लगा था। दस-पद्रह मिनट म कोतवाल और बहुत-से पुलिसवाले आ गये। मैंने कुर्सी पर बैठे-बैठे यह इतज़ाम कर लिया था कि, यदि पुलिस आ ही जाय, तो वालटियर और जनता की भीड़, किसीको जवाहरलालजी के पास तक न पहुँचने दे। पुलिस के देखते ही मैंने जवाहरलालजी का कुर्ता झटकना शुरू कर दिया। पर ये तो जोश मे आकर और भी जोर-जोर से बोलने लगे। तकरीर खत्म करने ही को थे कि पुलिस मच तक आ गई। मेरे पूछने पर कोतवाल ने तुरन्त ही नोटिस मेरे हाथ मे दे दिया।

मैं सत्याग्रही तो था, पर सच-झूठ का भेद अधिक नही करता था, ध्येय की प्राप्ति के लिए झूठ भी बोलना पड़े, तो बोलता था। एक मित्र ने कहा—"गाधीजी से कह दूंगा।" मैंने उत्तर दिया—"कह देना। एक झूठ उनके सामने भी बोल दूंगा।" यह 'सकट मोची' झूठ भी थके-मांदो का एक शस्त्र है, आड़े वक्त पर काम आता है, इसकी बहुत अवहेलना करना ठीक नही है। यह सौगात भी परमात्मा ने केवल मनुष्य-जाति को ही प्रदान की है, दूसरे प्राणियो को नही। पर भगवान् ने यह नुस्खा केवल सकट समय के लिए दिया था, हर समय इसे प्रयोग करना पाप है।

मेरा जी हुआ कि, नोटिस को फाड़ दूं, पर फिर सुझाई

दिया कि, जवाहरलालजी के होते हुए मेरे नोटिस फाडने को पड्यन्त्र समझा जायगा। मैंने नही फाडा, पर जवाहरलालजी के कुर्ते को झटककर भाषण बद करा दिया। जवाहरलाल-जी ने नोटिस पर लिख दिया—"भाषण के बाद मिला। मुझे अफसोस है कि मैं इसे भग करने से वचित रह गया।" फिर चाय पर आये और इलाहाबाद चले गये।

स्टेशन से लौटते ही मसूरी से टेलीफोन आ गया। बडी चिन्ता थी भाईजी (मोतीलालजी) को यह जानने की कि, क्या क्या हुआ। सब हाल सुनकर मुझे बधाई दी और पूछने लगे—"स्टेशन पर कितनी भीड थी ? और भीड में कमला को धक्का-उक्का तो नही लगा ?" मेरे आँसू आ गये। शायद ही किसी बाप ने अपने बेटे को इतना प्यार किया हो, जितना जवाहरलालजी को किया गया है। शायद यही कारण है कि ये हज़रत कतई 'बुते बेपीर' और 'माशूके बेमुरौवत' की तरह दीखते हैं।

इस घटना से पहिले, जब मैं जेल से छूटकर भाईजी से मिलने मसूरी गया था, तो कृष्णा आँगन में रस्से पर कूद रही थी और भाईजी बरामदे मे हकीम नाबीना से बातें कर रहे थे। मुझे देखते ही बोले—"मियाँ की लो दो सिर्फ एक ही तो बीबी थी, वही जेलखाने चली गई। अब क्या खाली हाथ हिलाते हुए घर आए!" फिर अन्दर के कमरे से एक बडा-सा लिफाफा लाये। उसी दिन उनके पास शिमले से एक लम्बा तार आया था। मुझे वह तार पढाकर बोले—"देखते हो सरकारी मुलाजिमो की देश-भक्ति! 'टाप सीक्रेट' है, और

न जाने कितने हिन्दू-मुसलमान तार-बाबुओं की उँगलियों से निकलता हुआ आया होगा।"

तार दस-पन्द्रह सफे का था। भाईजी उन दिनों केन्द्रीय असेम्बली में कांग्रेस-पार्टी के नेता थे। उसी दिन वाइसराय ने किसी फाइल पर हस्ताक्षर किए थे, जिसमें एक आर्डिनैन्स जारी करने का प्रस्ताव था। उस प्रस्ताव के अनुसार, कांग्रेस गैर-कानूनी घोषित होने जा रही थी। साथ में यह भी था कि, जो कांग्रेस में भाग लेगा या कांग्रेसवालों को रुपये-पैसे की सहायता देता पकड़ा जाएगा, उसकी सारी सम्पत्ति-जायदाद जब्त कर ली जाएगी। इस तार में उस आर्डिनैन्स का सार था। उस घटना को याद करके मुझे खयाल हो आता है कि स्वराज्य केवल हम कांग्रेसवालों ने ही नहीं लिया है, बल्कि इसमें उन लोगों का भी काफी हाथ था, जिन्होंने हृदय से देश की मूक और गुप्त सेवाएँ की हैं। हाँ, तो बात भाईजी की चल रही थी। जवाहरलालजी और कमला भाभी की जो दो तसवीरें दीवार पर टँगी थी, उनकी ओर इशारा करते हुए भाईजी बोले—"जब मोतीलाल अपनी इस औलाद के साथ, और वह जो रस्से पर फुदक रही है, उसकी उँगलियाँ पकड़कर बाजार में भीख माँगने निकलेगा, तो इस आर्डिनैन्स के डर से बहुत-सी दुकानों से मोतीलाल का हाथ खाली वापस हो जाएगा। आनन्द भवन तो जब्त हो ही जाएगा। मैंने हिदायत भेज दी है कि प्रयाग की रेती में एक झोंपड़ी बनाकर तैयार रखें।"

तसवीरों की ओर आँखें उठाते ही आँसू ऐसे छलक आए

कि, मानो प्यासे पिता की प्याली खाली देखकर, उन दोनों तसवीरो ने अमृताजलि से पानी बरसा दिया हो। मुझे भी अपनी साल भर की उमा याद आ गई, जो अपनी अम्मी के साथ उसी जेल मे अपना बचपन बिता रही थी, जहाँ कमला भाभी और श्रीमती उमा नेहरू आदि बंद थी। रोना भी तो एक छूत की बीमारी है! मेरी आँखें भी गदला गयी। बाप भीतर और बेटा बाहर हो, तो कोई गम नही; पर जब बाप बाहर और बेटा-बेटी जेल मे हो तो वेदना असहनीय हो जाती है। फिर मोतीलालजी जैसे महान व्यक्ति का यह कहना कि 'बहुत-सी दुकानों से मोतीलाल का हाथ खाली लौटेगा' मुझसे भुलाया नही जा सकता। इस वाक्य ने मुझे हिला दिया। इस घटना की याद ने मुझे अपने जीवन की संकटमय घडियो मे सात्वना प्रदान की है।

सहसा मेरे मुख से निकल पडा—"आप कैसी बातें करते है भाईजी! मुझे तो यह सुनकर डर लगता है।" बोले—"डर लगता है, तो तुम 'हैचो' घर बैठो। ऐसे आदमी का काग्रेस मे क्या काम?" यह बात मुझे तीर की तरह चीर गई। कही सचमुच डरपोक न समझा जाऊँ। मैंने खडे होकर बडे ज़ोर से कह दिया—"भाई जी, बीमारी की वजह से आपका दिमाग चल गया है, जो ऐसी बहकी-बहकी बातें करते हो। क्या हिन्दुस्तान इस बात को बरदाश्त कर सकता है? जिस दिन भीख माँगने निकलोगे भी, सारे देश में खून की नदियाँ बह जायेंगी। याद रखना, मसूरी से देहरादून तक सारे रास्ते मे गमलो की तरह कटी हुई गर्दनें सजा दूँगा। आग लग जाएगी आग,

धाप हैं किस होश में ! अब यह देश ज्यादा जुल्म बरदाश्त नहीं करेगा । एक-एक ग्रामवासी देश-भक्ति के रंग से रंगा पड़ा है।"

कैसे खुश हुए भाईजी मेरी बौखलाहट से ! जवाहरलाल होते, तो मेरा हाथ पकड़कर नीचे उतरने की सीढ़ी दिखा देते । हकीम नाबीना से भाईजी ने कहा—"इनको तरह हजारों हैं कांग्रेस मे । ऐसों की ताकत से ही चल रही है तहरीक । यह कभी फेल हो सकती है ?" उन बेचारों को क्या पता था कि स्वराज्य होने पर यही माई के लाल बेच खायेंगे कांग्रेस को, और पदों के लालच में बहा देंगे सारी देश-भक्ति पानी की तरह ! जो त्याग और बलिदान की भावना अपने अंतिम काल मे स्व० पंडित मोतीलाल नेहरू में थी, वह शमा पर चट-चट करके अपने को न्योछावर करनेवाले परवानों में मिलेगी, किसी दूसरी जगह नहीं ।

सात

गांधी का मुनादीवाला

सन् १६२० मे बिलोचिस्तान से 'जलावतन' हो जाने पर मैं सीधा गाधीजी के पास मिलने के लिये इलाहाबाद चला आया। वे आनन्द भवन मे ठहरे थे। अभी मुझे खद्दर के कपडे सिलवाने का अवकाश ही नही मिला था क्योकि मैं पहले महायुद्ध के सिलसिले मे फौजी नौकरी पर ईरान भेज दिया गया था, ३ वर्ष बाद (१६२० मे) समाचार-पत्रो में महात्मा गाधी की अपील पढते ही त्याग-पत्र देकर सीधा चला आया था। आनन्द भवन मे पण्डित मोतीलाल नेहरू, महात्मा गाधी, मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली आपस मे परामर्श कर रहे थे, मुझे उन तक पहुँचने की आज्ञा मिल गई। कुर्सी पर बैठते ही मैंने महात्माजी से अपना सब वृत्तान्त कहा और प्रार्थना की कि "मुझे कुछ काम बताइये।"

गाधीजी ने हँसकर उत्तर दिया, "जो काम बताऊँगा करोगे।"

मैंने कहा, "जी करूँगा।"

तब गाधीजी ने आज्ञा दी कि "जाओ, एक ढोल खरीदो और मुनादी करो।"

मैंने नमस्कार किया और लौट आया। अपने मन में सोचा कि काम तो बहुत आसान है, इसमें कोई अक़्ल की बात भी ज्यादा नहीं है, सिर्फ एक ढोल खरीदने की देर है, मुनादी करना शुरू कर दूंगा। पर किस बात की मुनादी करूँगा, यह सोचता हुआ मैं अपने घर चला गया और गांधीजी की आज्ञानुसार मुनादी करना आरम्भ कर दिया। तब से आज तक निरन्तर मेरा काम कांग्रेस में मुनादी करने का रहा है। अब मैं यह सोचता हूँ कि यह काम भी बहुत जिम्मेदारी का अच्छा काम था, जो मुझे सौंपा गया था। मैं इसी काम के द्वारा लीडर बन गया।

पुराने ज़माने में ग़रीब मेहतर लोग मुनादी किया करते थे, जब से मैंने मुनादी शुरू की, मुनादी के काम में महत्त्व आ गया। हर चौराहे पर एक मूढा-कुर्सी बिछाकर और उसपर खडा होकर या तो ढोल बजाकर या घंटा या बिगुल द्वारा एक भीड़ इकट्ठी कर ली और महात्मा गांधी के आदेशों का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। जब भीड ज्यादा इकट्ठी होने लगी तो एक भोंपू खरीद लिया ताकि उसके द्वारा दूर-दूर तक आवाज पहुँच जाए। इस तरह से थोडे ही दिन में मेरे शहर के लोग मुझे पहचान गये। बाज़ार के लोग तो चेहरे से पहचानते थे, औरतें जो छत पर से देखती थीं, वह मेरे गंजे सिर से मुझको पहचानने लगीं। किसी लीडर के लिये इससे अच्छी क्या बात है कि चारों तरफ से लोग उसे पहचानें। मेरी लीडरी का आरम्भ मुनादी से हुआ।

जवाहरलाल की धोती

सन् १६२१ में खद्दर १२ गिरह के अर्ज का होता था और यू० पी० की औरतों को मोटा कातने की आदत थी, इसलिये हम सब घुटने तक की धोती पहनते थे कि नहाने के बाद जिसको निचोड़ने के लिये या तो किसी साथी की मदद लेनी पड़ती थी या एक सिरा पैर के नीचे दबाकर ५ इंच मोटा रस्सा मरोड़ना पड़ता था। उन्ही दिनों की बात है कि महात्मा गांधी ने एक करोड़ कांग्रेस के मेम्बर बनाने और एक करोड़ रुपया तिलक स्वराज्य फ़ण्ड में जमा करने का आदेश दिया था। उस साल हमारी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के मन्त्री थे स्वर्गीय कपिलदेव मालवीय, श्री गौरीशंकर मिश्र, श्री जियाराम सक्सेना और जवाहरलाल नेहरू।

उन दिनों मेरा कार्यक्षेत्र जिला बिजनौर मे था। जवाहरलाल नेहरू हम सबसे ज्यादा फैशनेबिल समझे जाते थे। जब वे दौरे पर बिजनौर आये तो हमने देखा कि उन्होने डेढ़ पाट की धोती पहन रखी थी। यानी १२ गिरह के अर्ज के थान मे ६-७ गिरह का एक और पाट जोड़ दिया था, जिससे उनकी धोती नीची तगड़ीनुमा हो गई थी, और घुटने से नीचे तक आती थी। उन दिनों ५ गज की धोतियाँ पहनने का रिवाज था, अभी चार गज की धोती ईजाद नही हुई थी। श्री जवाहरलाल नेहरू भी पांच गज की धोती पहनते थे और बङ्गालियो की तरह, सामने चुन्नट लटकाने की बजाय फेटा बाँधते थे। उनको देखकर हम लोगों ने भी अपनी-अपनी धोतियाँ फाड़कर डेढ़ पाट की सिलबा ली थीं। मुझे ठीक

याद है कि लोग कांग्रेस का मेम्बर बनने से बहुत घबराते थे और औसतन पचास घरों में चार या पाँच मेम्बर बना पाते थे। सुबह से शाम तक घूमकर चार या पाँच मेम्बर भी बन जाते तो हम अपने को धन्य समझते थे, और अपने शहर में जितने मेम्बर कांग्रेस के बनते थे उन सबके नाम हमें ज़बानी याद रहते थे।

जवाहरलाल नेहरू के आ जाने से हमारी हिम्मत बढ़ी और यह हमारे साथ मेम्बर बनाने के लिये बाजार मे निकल पड़े। एक दुकान पर जाकर जवाहरलाल नेहरू ने चन्दे के लिये अपना कुरता सामने फैला दिया कि जैसे भिक्षा माँगते हैं। इसका असर इतना पडा कि हम पागल बन गये। रात और दिन, दिन और रात, निरतर काम करते थे। उन दिनों मोटरो का रिवाज तो था नही, अधिकतर पैदल ही जाते। अभी वह आँखें जिन्दा हैं जिन्होने प्रधान मन्त्री नेहरू को रायबरेली, प्रतापगढ आदि क्षेत्रो मे मामूली चप्पल पहने, गाँव-गाँव, जगल और झाडियो में से पैदल सफर करते देखा है। क्या जोश था, क्या उमङ्ग थी, क्या जौलानी थी कि विद्यार्थियो के दल के दल अपने भविष्य को हथेली पर रख उमड-उमडकर काग्रेस के नेतृत्व में स्वतन्त्रता-आन्दोलन में भाग लेने के लिये आते थे।

उसी आन्दोलन के फलस्वरूप आज हमारा देश स्वतन्त्र हुआ है। मेरा यह कहना है कि किसी सार्वजनिक आन्दोलन के उठाने के लिये यह अनिवार्य है कि हम उस आन्दोलन के निमित्त किसी भी छोटे से छोटे काम को करने में अपमान न

समझे। दुनिया भर मे घूमकर देख लो, इतिहास को भी देखो, जितने महत्त्वपूर्ण आन्दोलन इस ससार में हुए हैं चाहे वह गौतम बुद्ध, ईसा, मुहम्मद आदि पैगम्बरो ने चलाये हो, या राजनैतिक नेताओ ने, वह सब भिक्षुओ द्वारा ही चले है, त्याग के बल पर चले हैं, पैदल चलकर और नगे-भूखे रहकर चले है। मोटरो, होटलो और 'मटनचाप' द्वारा भी प्रचार हो सकता है पर वह प्रचार सार्वजनिक प्रचार नही हो सकता और न वह सामूहिक आन्दोलन का रूप ले सकता है। मेरा अनुभव है कि मुनादी जैसे निकृष्ट कार्य द्वारा भी एक व्यक्ति ऊँचा पद प्राप्त कर सकता है, बशर्ते कि वह उस निकृष्ट कार्य मे रत हो जाए।

आज तो मैं भारत का रक्षा सगठन मन्त्री हूँ, फिर भी दो-तीन दिन हुए देहरादून मे ढोल लेकर जगह-जगह यह एलान करके आया हूँ कि "जवाहरलाल नेहरू हमारे नगर मे पधार रहे हैं, सब भाई-बहिनो को चाहिए कि उनका स्वागत और दर्शन करने के लिए पुष्प-माला आदि लेकर सडक के दोनो ओर खडे हो जायें, मैं उनकी मोटर को आहिस्ता-आहिस्ता चलवाऊँगा, ताकि आप जी भर के दर्शन कर सकें।" मेरी यह धारणा है कि मुनादी करने का काम मैं जीवन-भर करूँगा। 'मुनादी' महात्मा गाधी का दिया हुआ पोर्टफोलियो है, मिनिस्ट्री का पोर्टफोलियो जवाहरलालजी का है। अगर इन दोनो मे झगडा आयेगा तो मैं जवाहरलाल का पोर्ट-फोलियो छोड दूँगा, गाधीजी का नही छोडूँगा।

आठ

लौहपुरुष सरदार पटेल

वह अचल निश्चय, अटल नीति और अमिट प्रतिमा लेकर हम भारतीयों को कार्यक्षेत्र की कुशलता का पाठ पढाने आए थे। लोग उन्हें लौहपुरुष कहते थे पर यह पता बहुत कम को है कि लोहे के पिंजड़े की तरह, उनके वक्षस्थल के भीतर, एक चकोर जैसा निर्दोष और बच्चों जैसा चंचल हृदय गतिमान था। मुझे शक है कि शायद उनका दिल आँखो मे हो, क्योंकि उनकी पलक भारी और पुतली सुस्त नज़र आती थी। मेरे एक मित्र का कहना है कि आँखो को अपेक्षा उनके दिल की झलक ओठों पर अधिक दिखाई देती थी। लोग यह भी कह सकते हैं कि 'दिल' ज़बान (जिह्वा) मे था। कुछ भी हो, था वह एक अनोखा दिलवाला दिलावर। हँसता था तो सारे दीवार-दरवाजे, बाग-बगीचे हँस पडते थे, बोलता था तो दुनिया एक-चित्त और एककान होकर सुनती थी।

मेरी-उनकी बहुत गहरी 'मैत्री' थी। 'मैत्री' शब्द का प्रयोग इसलिये कर दिया कि एक बार मेरे एक मित्र (स्व० खुरशेद लाल) ने, जो कभी-कभी मेरे साथ शाम को गप-शप के लिए देहरादून के सरकिट-हाउस चले जाया करते थे, उनकी

कही हुई किसी रहस्य की बात की चर्चा पार्लियामेंट के अपने एक साथी (स्व० बालकृष्ण शर्मा) से कर दी, और साथ में यह भी कह दिया कि इसे अपने ही तक रखना। वह मित्र तीसियों वरस से इस बात के लिए मशहूर थे कि वह अपने पेट में कोई बात रख नहीं सकते थे। और अगर यह कह दो कि किसीको कहना मत, फिर तो अवश्य ही अगले दिन वह बात किसी दूसरे साथी से रंगी-पुती सुनने को मिलेगी। बस अपने धर्म और स्वभाव के अनुसार उन्होंने इस बात की चर्चा कर दी और होते-होते वह बात सरदार साहब तक पहुँच गई।

कुछ दिन बाद सरदार साहब ने मुझे बुलाया और पूछा कि तुम उसे अपने साथ क्यों लाये थे ? मैं बहुत लज्जित हुआ। मेरे मित्र को भी यह जानकर बहुत क्षोभ हुआ। यह दिल्ली की बात है, अगले दिन अपने रिवाज के अनुसार मैंने मणिबेन को टेलीफोन किया कि क्या मैं आऊँ ? दूसरे-तीसरे दिन प्रात उनके साथ मोटर में हवाखोरी को जाया करता था। कभी किसी और को साथ न ले जा रहे हो, इसलिए पहले टेलीफोन से पूछ लेता था। उस दिन मणिबेन ने कह दिया— "ठीक न होगा, यहाँ की बातें न जाने कहाँ-कहाँ पहुंचती हैं।" अपने जीवन के सबसे बड़े झटकों में से यह एक था। बस, जी मसोसकर रह गया। अगले दिन श्री शंकर (सरदार के प्राइवेट सेक्रेटरी) ने टेलीफोन किया—"सरदार याद कर रहे हैं।" मैंने कहा—"बस, हो चुका मेरे लिए उस घर का दरवाजा हमेशा के लिए बन्द, अब न आऊँगा।" फिर कुछ दिन उस मुहल्ले का आना-जाना बन्द रहा।

सरदार साहब इस बीच देहरादून चले गए। मैं भी देहरादून लौट गया। मेरे पहुँचते ही टेलीफोन आया कि "बुला रहे हैं।" मैं चला गया। दोपहर का खाना था, मुझे खाने को कहा। मैंने माफी चाही तो कहा—"बिना खाए माफी नही हो सकती।" गले म हाथ डालकर बोले—"देखो पचतत्र मे लिखा है

"ययोरेव सम वित्त ययोरेव सम वलम्।
तयोर्मैत्रीविवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयो ॥

"अर्थात् वही मैत्री और विवाह फलते-फूलते हैं जो अपनी बराबरी वाले से किए जाएँ।"

मैं उनका आशय समझ न पा सका। फिर बोले, "जब एक बार दोस्ती कर ली तो फिर चाहे जान भी जाए दोस्ती तो लग गई।" मैं अब भी न समझा। खाने पर बैठकर फिर कहा—"हमने तुमसे दोस्ती लगाई है, मजूर है तो हाँ बोलो।" मैंने उत्तर दिया—"हमे मजूर नही है, क्योकि तुलसीदास कह गए हैं, *लायक ही सो कीजिए ब्याह, बैर अरु प्रीति।*" सब हँस पडे। बोले—"हमने बरोबर की लगाई है बोलो।" मैंने कहा—"ना।" सरदार ने दु ख मानकर कहा—"तो फिर हमारा खोट बालो।" मैंने कहा—' खोट कुछ नही, जैसी हम चाहे वैसी दोस्ती लगाओ तो स्वीकार कर सकते हैं।" 'बोलो कैसी चाहते हो ?" मैंने कहा—"आपकी और दयाभाई (पटेल के पुत्र) की दोस्ती ऐसी, जैसी महात्माजी और देवदास की। मेरे साथ आप वैसी दोस्ती लगाएँ जैसी महात्माजी और हीरालाल गाधी की, ताकि मैं चाहे जो खाऊँ, पिऊँ और चाहे जो करूँ, हिन्दू रहूँ या

मुसलमान, दोस्ती न छूटे।" सब लोग कहकहा लगाकर हँस पडे। सरदार ने कहा—"चलो लगाई।" इस तरह से उस दोपहर को मैं उनका हीरालाल बन गया। फिर क्या था मरने तक मेरे साथ वही प्रेम और स्नेह बना रहा।

सरदार का बुलावा

सन १९४८ की बात है। मैं पुनर्वास मंत्रालय की एक कमेटी के सिलसिले मे दिल्ली आया था, और श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति के घर ठहरा हुआ था कि अकस्मात् श्री रफी अहमद किदवई की कोठी से टेलीफोन आया कि मुझे सरदार पटेल ने याद किया है और उनके निवासस्थान पर मोटर इन्तज़ार कर रही है, मुझे फौरन देहरादून के लिए रवाना हो जाना चाहिए। शाम का समय था, मैं घबडा गया। महात्मा गाधी की हत्या के बाद सरदार पटेल को हृदय-रोग हो गया था, जिसके कारण वह बार-बार विश्राम के लिए देहरादून जाया करते थे। अपने मन का पाप, मुझे ऐसा लगा कि कही सरदार की तबियत एकदम खराब न हो गई हो कि जिसके कारण मणिबेन ने, जो उनकी एकमात्र तीमारदार थी, घबडाकर मुझे बुलाया हो। सारा काम छोड मैं सीधा नम्बर १, औरगजेब रोड पहुँचा और जाते ही मोटर मे सवार हो देहरादून के लिए रवाना हो गया।

रास्ते भर अपने अभागे मन से लडता, और अपनी हार पर ग्लानि करता चला गया। कैसा मनहूस मन है मेरा, कि बावजूद पूरी कोशिश करने के यही सोचता गया कि कही मेरे पहुँचने से

पहले ही उनकी हृदय-गति न रुक गई हो। मणिबेन से पूछूंगा कि क्या हाल है तो वह किस मुँह से और किन शब्दों में बताएँगी ? शायद 'सरकिट हाउस' के गोल कमरे में लिटा रखा होगा ? मेरे कांग्रेस के सब साथी तो वहाँ पहुँच ही गए होंगे, पर जाने फूल आदि का प्रबन्ध भी किया हो या नहीं ? उन्हें लेकर सीधा दिल्ली चला आऊँगा। पीछे से मोटर आई तो सोचा—'जरूर टेलीफोन से खबर कर दी होगी, शायद यह मोटर जवाहरलाल नेहरू की है।' बाहर झाँका तो ग्लानि हुई—अरे कमबख्त, क्या तू सदैव अपने मित्रों का मरना ही चाहता है ? इरादा किया, ईश्वर से प्रार्थना करूँ। गायत्री मंत्र पढ़ने लगा उनकी जीवन-रक्षा के लिए। पर लानत है मुझपर कि मुँह पर गायत्री मन्त्र और मन में मणिबेन और श्री शंकर आदि का रोना। बस इसी चक्कर में रात हो गई, देहरादून आया, सरकिट हाउस का फाटक आया, पुलिस गायब और रोशनी गुल ?

पर फौरन ही चपरासी हँसता हुआ और नमस्ते करता बाहर निकला। उसे देख जान में जान आई। सब लोग सो गए थे। मेरे लिए हुक्म था कि मैं अपने घर (रैनबसेरे) न जाकर वहीं सो रहूँ। कमरे में बिस्तर सजा हुआ था, लेटते ही नींद आ गई। प्रातः उठते ही मणिबेन चाय लाईं। कितना प्यारा लगा उस परिवार का आतिथ्य-सत्कार ! जैसे ही बाहर निकला, सरदार ने बुला लिया। नाश्ते की चाय तैयार थी। सरदार ने खड़े होकर स्वागत किया। हमने 'सीख' ली कि चाहे छोटा भी क्यों न हो, घर आए का स्वागत इस

ढग से होना चाहिए। सरदार बोले, "शकर, वह कागज निकालो, शुभ कार्य करने से पहले ब्राह्मण को पूछना चाहिये।"

मैं भौचक्का-सा रह गया। क्या कागज है ? सरदार बोले, "तुम्हे एक गम्भीर परामर्श के लिये बुलाया है।" कागज के आते-आते मणिबेन और सरदार साहब के पी०ए० इस ढग से हम लोगो के पास आ खडे हुए कि जैसे किसी सगीन मुकदमे की सुनवाई हो रही हो। श्री शकर ने लिफाफे से कागज निकाला और मेरे हाथ मे रख दिया। देखा तो ज्ञात हुआ पत्र है पडित जवाहरलाल नेहरू के नाम। पत्र के शब्द क्या थे, याद नही। क्योकि मेरी आखें भाषा, शब्द और शब्दो के अर्थ को पार करके, उस पत्र के परिणामस्वरूप भारत के उस अन्धकारमय चित्र पर लग रही थी, जोकि इस पत्र की पहुँच के बाद अवश्य ही सामने आनेवाला था। सारी पक्तिया पढ चुकने पर भी पत्र को पढता-सा रह गया। सरदार ने पूछा, "पढ चुके ?" मैंने जवाब क्या देना था ? फैली हुई आंखें पत्र की जगह सरदार के चेहरे को पढने लगी।

"क्यो, पसन्द नही आया ?" सरदार ने पूछा।

मणिबेन और शकर मेरे मुंह को ऐसे ताकने लगे कि जैसे अन्तिम शब्द का पूर्ण अधिकार इस ब्राह्मण को ही है। मुझे ऐसा लगा कि परिस्थिति मेरी समझ से कही अधिक गम्भीर है। जल्दी मे कह गया—"अगर आप कहे तो मैं दस मिनट बगीचे मे घूमकर इस पत्र को हजम कर लूं।" सरदार ने हँसकर कहा, "हां जाओ, मैंने इसका निर्णय तुम्हीपर

छोड़ा है।" मैं उठकर कमरे से बाहर चला गया और सोचने लगा कि क्या जवाब दूं ? मेरे जीवन की सबसे बडी परीक्षा सामने आ गई थी।

दुविधा

असल बात यह है कि मनुष्य के दिलो-दिमाग और शरीर को सबसे अधिक क्षति पहुँचानेवाली घडी वह होती है जब कभी वह किंकर्तव्यविमूढ होकर दुविधा मे पड जाए और अपनी समस्या का कोई हल न निकाल सके। ऐसे समय पर बडे से बडे दिमाग 'शून्य स्तर' (ज़ीरो लेवेल) पर पहुँच जाते हैं और उनके जीवन की बडी से बडी समस्याएँ या तो पैसा उछालकर या किसी चिडिया के बोल पडने, या उड जाने पर, या नाक के दाहिने-बाएँ स्वर चलने, या आंख मीचकर रामायण के पन्ने खोलने पर हल होने लगती है। मेरा ख्याल है कि सरदार साहब का भी उस दिन ऐसा ही हाल था, वरना इतने बडे विचारवान मुझ जैसे तुच्छ सेवक से ऐसे गम्भीर प्रश्न पर परामर्श क्यो करते ? मणिबेन और शकर क्या कुछ कम प्रतिभावाले थे ? पर दुविधा भी एक सक्रामक बीमारी है। वे दोनों भी शायद दुविधा मे थे।

मुझे टहलते-टहलते बहुत देर हो गई थी और शायद मैं भी कुछ-कुछ उसी दुविधा के रास्ते पर जा रहा था कि सरदार ने बुला भेजा। "क्या सोचा ?" भारत के भाग्य से मेरे मुंह मे सरस्वती व्याप गई। मैंने बिना सोचे-समझे उत्तर दिया, "पत्र की भाषा बहुत सधी हुई और नपी-तुली है। जिस

आशय से प्रेरित होकर लिखा है वह भी उच्चकोटि का है, और इसमें सन्देह नहीं कि इस सिलसिले में जो रुख आपने लिया है उसकी ओर कोई अंगुली नहीं उठा सकता। पर यह समझ लीजिए कि महात्मा गांधी के चले जाने पर देश की आस आप और जवाहरलाल पर बँधी है। इस पत्र के दिल्ली पहुँचने पर कांग्रेस सरकार, और कांग्रेस के तमाम नेताओं का खात्मा हो जानेवाला है। और गो कि जनता आपका साथ देगी, पर इतिहास का साक्ष्य आपके विरुद्ध पड़ेगा, और जो तबाही देश पर आएगी उसकी सारी जिम्मेदारी आपके सर पर थोपी जाएगी। और सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाने पर जितना दुख आपको होगा उतना किसी और को न होगा। जिस बात को रखने के लिए पत्र लिख रहे हैं वह भी पूरी न हो सकेगी।"

सरदार बोले, "और जो कुछ होने जा रहा है उसको होने दिया जाए? उससे जो परिस्थिति होगी क्या वह कम विनाशकारी है? लोग मुझे भी पूछेंगे, तू भी तो वर्किंग कमेटी का मेम्बर था, तूने इस परिस्थिति को रोकने के लिए क्या किया?"

मैंने कहा, "इसीलिए मेरी राय है कि इस पत्र को जरूर भेजा जाए, पर बाबू राजेन्द्र प्रसाद के पास यह लिखकर इसे भेज दीजिए कि मैं बीमारी के कारण यहाँ अकेला पड़ा हूँ, कोई दूसरा साथी सलाह करने को है नहीं, वर्किंग कमेटी की बैठक में आने से भी लाचार हूँ, विषयक्रम (एजेण्डा) को देखकर जो प्रतिक्रिया मुझपर हुई है उसके फलस्वरूप यह पत्र

जवाहरलाल को लिखा है। आप कांग्रेस के प्रधान हैं इस लिए चाहता हूँ कि पहले आपको दिखा दूँ, कृपया इसे पढ़-कर जवाहरलाल के पास भेज दें।"

"बस हो गया, शकर, ब्राह्मण की बात मानो और फौरन मोहर लगाकर लिफाफा मोटर द्वारा बाबू राजेन्द्रप्रसाद के पास भेज दो।" मेरे लिए भी कुछ शब्द कहे जिन्हें अपने जीवन का अमूल्य पुरस्कार समझकर आज भी मैं खुश हो लेता हूँ।

परीक्षा की सफलता से पुलकायमान होकर जब मैंने घर जाने की आज्ञा चाही तो बोले, "अरे खाना खाकर जाना थोडी देर मे राजेन्द्र बाबू का टेलीफोन भी तो आएगा, उसे भी तो सुनना।"

बात यह थी कि मेओ को पाकिस्तान से वापिस बुलाकर फिर से बसाने के प्रश्न पर मन्त्रिमडल दो बार अपना निर्णय दे चुका था, इसके बावजूद कांग्रेस वकिंग कमेटी के एक सदस्य की प्रेरणा से वह सवाल वकिंग कमेटी के विषयक्रम में लाया गया था। इस आशय से कि कैबिनेट के निर्णय को वकिंग कमेटी द्वारा बदलवा दिया जाए, यह सरदार साहब को नामजूर था। बीमारी के कारण कमेटी की बैठक मे जा नही सकते थे तो उन्होने कांग्रेस वकिंग कमेटी और मन्त्रिमडल दोनो से त्यागपत्र देने की ठान ली थी।

गप शप और खाने मे कुछ घटे लग गए। मैं अभी गोल कमरे मे था कि टलीफोन की घटी बजी, "दिल्ली से सरदार साहब के लिए टेलीफोन है।"

टेलीफोन के कमरे से हँसते हुए लौटे और दोनो हाथो से

चिड़िया-सी उड़ाते हुए ज़ोर से बोले, "देखा, हम तो कहते थे, राजेन्द्रबाबू तो घबरा गए, वह भी हमसे सहमत हैं और उन्होंने एजेंडा में से वह आइटम (विषय) निकाल दिया।"

विनोदप्रियता

एक दिन मुझे टेलीफ़ोन आया, "नरसिंह का रथ लेकर फ़ौरन चले आओ।" वह मेरी जीप को 'नरसिंह का रथ' कहा करते थे। मैं दस मिनट में सरकिट हाउस पहुँच गया तो बोले, "डा० सुशीला नायर को अपने रथ में मीराबेन का 'पशुलोक' दिखा लाओ।"

महात्माजी के आशीष और आज्ञा से मीरा बहन ने ऋषिकेश के नजदीक बूढ़ी, मरती-गिरती और बीमार गायों को पालने का एक केन्द्र खोला हुआ था जिसे 'पशुलोक' कहते थे। मैंने कहा, "अच्छा, आप कहते हैं तो चला जाऊँगा।"

सरदार ने ताज्जुब से पूछा, "इतने मरे मन से क्यों बोले?"

मैंने उत्तर दिया कि पुराणों में कथा आती है कि जब पाडव पहाड़ों पर गलने के लिए प्रस्थान कर रहे थे तब स्वर्ग से एक पुष्पक विमान उन्हे लेने आया था। उस परिवार के साथ एक कुत्ता था। कहते है, उनके साथ वह भी स्वर्गलोक चला गया। मेरा भाग्य कि मेरा मेल एक ऐसे परिवार के साथ हुआ कि स्वर्गलोक तो क्या मुझे मृत्युलोक छोड़कर 'पशुलोक' भेजा जा रहा है। कितना हँसे, कितना हँसे सरदार कि मैं लिख नही सकता। कई बार इस बात को याद करके वह विनोद किया करते थे।

सादा जीवन

एक बार मणिबेन कुछ दवाई पिला रही थी। मेरे आने-जाने पर तो कोई रोक-टोक थी नहीं, मैंने कमरे में दाखिल होते ही देखा कि मणिबेन की साड़ी मे एक बहुत बडी थेगली (पैबन्द) लगी है। मैंने जोर से कहा, "मणिबेन, तुम तो अपने को बहुत बडा आदमी मानती हो। तुम एक ऐसे बाप की बेटी हो कि जिसने साल भर मे इतना बडा चक्रवर्ती अखण्ड राज्य स्थापित कर दिया है कि जितना न रामचन्द्रजी का था न कृष्ण का, न अशोक का था न अकबर का और न अंग्रेज का। ऐसे बड़े राजो, महाराजो के सरदार की बेटी होकर तुम्हें शर्म नही आती।" बहुत मुंह बनाकर और बिगडकर मणि ने कहा, "शर्म आए उनको जो झूठ बोलते और बेईमानी करते है, हमको क्यो शर्म आए?" मैंने कहा, "हमारे देहरे शहर में निकल जाओ तो लोग तुम्हारे हाथ मे दो पैसे या इकन्नी रख देंगे यह समझकर कि एक भिखारिन जा रही है। तुम्हे शर्म नही आती कि थेगली लगी धोती पहिनती हो।" मैं तो हँसी कर रहा था। सरदार भी खूब हँसे और कहा, "बाजार मे तो बहुत लोग फिरते हैं। एक-एक आना करके भी शाम तक बहुत रुपया इकट्ठा कर लेगी।"

पर मैं तो शर्म से डूब मरा जब सुशीला नायर ने कहा, "त्यागी जी, किससे बात कर रहे हो, मणि बहन दिन भर सरदार साहब की खडी सेवा करती हैं, फिर डायरी लिखती हैं और फिर नियम से चरखा कातती हैं। जो सूत बनता है

उसीसे सरदार के कुर्ते-धोती बनते हैं। आपकी तरह सरदार साहब कपड़ा खद्दर भंडार से थोड़े ही खरीदते है। जब सरदार साहब के धोती-कुर्ते फट जाते हैं तब उन्हीको काट-सीकर मणि बहन अपनी साड़ी-कुर्ता बनाती हैं।"

मैं राक्षस-रूप उस देवी के सामने अवाक् खड़ा रह गया। कितनी पवित्र आत्मा है मणिबेन। उनके पैर छूने से हम जैसे पापी पवित्र हो सकते हैं। फिर सरदार बोल उठे, "गरीब आदमी की लड़की है, अच्छे कपड़े कहाँ से लावे? उसका बाप कुछ कमाता थोड़े हो है।" सरदार ने अपना चश्मे का केस दिखाया। शायद बीस बरस पुराना था। इसी तरह तीसियों बरस पुरानी घड़ी और एक कमानी का चश्मा देखा जिसके दूसरी ओर धागा बँधा था। कैसी पवित्र आत्मा थी! कैसा नेता था! उसी त्याग-तपस्या की कमाई खा रहे है हम सब नई-नई घड़ियाँ बांधनेवाले देशभक्त!

से बाज़ार वालों को बहुत संतोष हुआ क्योंकि वह मन से तो हमारे साथ थे पर जेल-जुर्माने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने हमसे आकर कहा कि बधाई है आपकी सूझ-बूझ पर। अब रात के बारह बजे तक दुकानों को खुलाए रखो ताकि कलक्टर को पता लग जाए कि सारे बाजारवाले जी-जान से आपके साथ हैं, और उसके बाद घोषणा कर देना कि चूंकि रात के बारह बजे तक शहरवालों ने दुकानें खुली रखकर यह बात साफ कर दी है कि वह कांग्रेस से सहानुभूति रखते हैं, इसलिए कल की हड़ताल करना आवश्यक नहीं। बात तो ठीक थी पर कलक्टर चुनौती दे चुका था। इस वालंटियर को भी उसने कह दिया कि "हम भी कोटवाली इन्टजार करेगा। अगर टुम्हारा डिक्टेटर जलूस करेगा टो हम गोली चला डेगा।" रात के साढे दस बजे तक दुकानें खुली रखकर मैंने घोषणा करा दी, 'डिक्टेटर साहिब की आज्ञा है कि कल को हड़ताल लाज़मी तौर से होगी।' कलक्टर अपने बंगले चला गया था। मुझे बहुत आशा थी कि यह वालंटियर तो पकड़ा ही जायेगा, पर यह भी सही-सलामत वापिस लौट आया। अब करूँ तो क्या करूँ।

बेचारी शर्मदा

मैं अपने ग्राम अजबपुर लौट आया। बीवी खाना लिए परेशान बैठी थी। खाना खाकर मेरे जेल जाने की तैयारी मे किताब और कपड़ बंधने लगे। आशा थी कि रात रात मे गिरफ्तार हो जाऊँगा। जब भी किसी तांगे की आहट हो, या

मोटर का हार्न बजे, तो शर्मदा फ़ौरन खिड़की से झाँके कि पुलिस आ गयी। सारी रात बातों में कट गई। आज इस घटना को तीस वर्ष हो गए पर "मैं इकली कैसे रहूँगी" कह-कर शर्मदा का चीख मारकर रो पड़ना मुझे आज भी कल की सी बात लगती है। क्योंकि आज मैं स्वयं उस पीड़ा को भोग रहा हूँ। मैंने उसे बीसियों तरह समझाया पर रोना दिल का होता है दलील का नही। फिर मैं भी रो पड़ा, और मैंने कहा, "जेल तो जाना ही होगा, यदि तुम्हें रोता छोड़कर गया तो जब तक वहाँ रहूँगा तुम्हारा विलाप मुझे रुलाता ही रहेगा।" यह उसकी समझ मे आ गई और वह कहने लगी, "जेल-वाले हम दोनो को एक साथ नही रख सकते ?" कैसी भोली और प्यारी बात कही थी वह, कि अब भी उसे याद करके प्रेम से पुलकायमान हो जाता हूँ। अब चार बज गये। शर्मदा ने कहा, "हड़ताल तो हो नही सकती, यह कलक्टर तुम्हें परास्त करने के बाद ही पकड़ेगा।" मैंने कहा "मै बाईसिकल पर जाता हूँ। अँधेरे-अँधेरे मे हड़ताल की मुनादी करूँगा और पौ फटते ही कांग्रेस दफ़्तर के सामने आ जाऊँगा। तुम उमा को शाल मे लपेटकर यही चली आना ताकि गिरफ़्तारी तीनो की साथ ही हो जाये।" यह बात उसे पसंद आ गयी और उसने भी अपनी किताब, बिस्तरे ठीक कर लिए और दफ़्तर आ गई।

इधर मैंने बिगुल बजा-बजाकर निम्नलिखित घोषणा करनी आरम्भ कर दी :

"आराम की नीद सोनेवाले बहन-भाइयो, मैं

नौ

हड़ताल

अभी महात्मा गाधी गोलमेज कान्फ्रेंस, लदन मे वापिस नही लौट पाए थे कि हमारी प्रान्तीय काग्रेस कमेटी की ओर से हिदायतें जारी हो गई कि जिले का जाब्ता तोडकर वार-कौंसिल (युद्ध-समिति) बना दी जावे। हमारी जिला काग्रेस कमेटी ने मुझे डिक्टेटर नियुक्त कर दिया और स्व० चौ० बिहारी लाल, स्व० चौ० हुलास वर्मा, स्व० प० नारायनदत्त डगवाल, स्व० स्वामी विचारानन्द और स्व० लाला केदारनाथ आदि की एक युद्ध-समिति बना दी गयी। २५-१२-१६३१ को पेशावर मे हमारे लाल कुर्ती वाले बहुत-से भाइयो पर अग्रेजों ने गोली चला दी थी और बहुत-से भाई शहीद हो गए थे। हमें उन शहीदो का दिन मनाना था कि इसी बीच मे गाधीजी लौट आए और पकडे गए। श्री जवाहरलाल नेहरू भी गिरफ्तार हो गए। यह घटना २५ दिसम्बर, १६३१ की है। जिला काग्रेस कमेटी की ओर से एक हडताल की घोपणा हो चुकी थी पर इसके एक दिन पहले ही कलक्टर मिस्टर ऐक्टन ने कोतवाल द्वारा एक मुनादी करवा दी कि कल को यदि कोई व्यक्ति हड-ताल करेंगे तो उन्हें ६ महीने की सजा और ५०० रुपये जुर्माना

होगा। हमने समझा कि कोई आर्डिनेन्स जारी हो गया होगा। सबने अपने-अपने विस्तर बाँध लिए। हम कांग्रेस के दफ़्तर में इकट्ठे हुए। शहरवालों का तकाजा था कि हड़ताल की घोषणा वापस कर ली जावे पर निश्चय यह हुआ कि जिला कांग्रेस कमेटी की घोषणा को युद्ध-कौंसिल वापिस नहीं ले सकती। पर हड़ताल होना नामुमकिन हो गया। हमने इधर-उधर अपने आदमी भेजे पर उन सबने यही रिपोर्ट दी कि दुकानदार एक भी हड़ताल करने को तैयार नही है। कोतवाल मुनादी करते-करते कांग्रेस के दफ़्तर के सामने आ गया और कई बार उसने ढोल बजाकर कलक्टर की घोषणा पढी। मेरे सामने खड़े होकर इस घोषणा को पढने के अर्थ थे मुझे चुनौती। हमने अपना दफ़्तर क्रिया-कर्मवाली धर्मशाला में बना रखा था कि जहाँ स्वर्गवासियों के पिंडदान होते थे। हम सब दफ़्तर में इकट्ठे हुए बैठे थे ताकि साथ-साथ गिरफ़्तार हो जायें। स्व० चौ० बिहारीलाल ज़िला कांग्रेस कमेटी के मंत्री थे और मैं प्रधान। इस लड़ाई की तैयारी के लिए हम कई महीनों से ग्रामों का दौरा कर रहे थे। हर गाँव में एक जलसा करते और लोगों को विश्वास दिलाते कि इस बार अंग्रेज़ी हुकूमत की जड उखाड़ फेकेंगे। अन्त में मैं बहिनों को कहता कि "तुम सब कौशल्या हो और गाधी की ओर से तुमसे राम-लक्ष्मण की भिक्षा माँगता हूँ, मुझे दो शिष्य चाहिए जिन्हे मैं अपने आश्रम मे बड़े प्यार से रखूंगा पर उन्हे मेरे साथ जेल काटनी पड़ेगी।" फिर गाँव के सब नर-नारी मिलकर दो युवक हमारे सुपुर्द करते। हम उनको तिलक लगाते और फूल-

माला पहिनाकर ढोल बजाते हुए जलूस बनाकर शहर ले ग्राते। ग्राम छोड़ने से पहले मैं उन दोनों बच्चों को कहता कि अपनी माता के चरण छू लो ग्रौर पिता से ग्राशीश मांगो। जब वह माता से विदा मांगते तो माता उन्हें गले लगाती ग्रौर बहिनें तिलक-ग्रारती करती। एक मां ने मुझसे ग्रलग बुलाकर कहा, "त्यागी महाराज, इसका ब्याह होनेवाला है, इसे लम्बी जेल मत कटवाना।" इस तरह से करीब पचास 'राम-लक्ष्मण' ग्राश्रम मे रहते थे। सबके सिरो पर खद्दर के कफन बांधे रहते ग्रौर रोजाना प्रभात-फेरी को यह गाते हुए निकलते थे :

"किसीके इशारे के हम मुन्तजिर हैं,
बहा देंगे खूं की नदी देख लेना।"

इसी तरह देश के कोने-कोने मे हम लोगों ने उत्साह की ऐसी लहर चला रखी थी कि मानो समुद्र उफान खाता हो।

कोतवाल की मुनादी सुनकर मैंने एक स्वयसेवक को ग्रावाज़ दी ग्रौर कहा, "तुम्हे मोर्चे पर जाना है, यह घटा लो ग्रौर इसे बजा-बजाकर केवल यह मुनादी करो कि सब-को सूचना दी जाती है कि जिला काग्रेस कमेटी का जाब्ता तोडकर वार-कौंसिल (युद्ध-समिति) की स्थापना कर दी गई है ग्रौर त्यागीजी को डिक्टेटर नियुक्त कर दिया गया है।" इसी तरह दूसरे ग्राठ-दस स्वयसेवको को कहा गया कि ये एक-दूसरे के सौ गज पीछे ग्रपने घटे ग्रौर झडे को छिपाये हुए चलते रहे, जब मुनादीवाला साथी पकडा जाये तो उसके पीछेवाला जेब से भण्डा निकालकर ग्रपनी लाठी मे लगाये ग्रौर फौरन मुनादी शुरू कर दे ग्रौर दूसरे साथी जल्दी से

दफ़्तर मे रिपोर्ट करने आ जायँ। शाम के चार बजे एक वालंटियर ने सूचना दी कि कोतवाली के सामने कलक्टर साहिब (डिप्टी कमिश्नर) ने हमारे मुनादीवाले को रोककर कहा है, "अपने डिक्टेटर को बोलो कि सरकारी डिक्टेटर भी अपने मोर्चे पर आ गया है, हड़ताल नही होने सकता।" यह सुनकर मेरा खून उबल पड़ा। मैं जानता था कि हड़ताल नहीं हो सकेगी फिर भी एक विदेशी अफसर मुझे चुनौती दे, यह सहा न गया। मैंने इरादा कर लिया कि कल दिन निकलने से पहले ही अपने को गिरफ्तार करा दूं। ऐसी दशा में यदि हड़ताल न भी हो सकी तो कहने को तो हो जायेगा कि डिक्टेटर

से बाजार वालो को बहुत सतोष हुआ क्योकि वह मन से तो हमारे साथ थे पर जेल-जुर्माने के लिए तैयार नही थे। उन्होंने हमसे आकर कहा कि बधाई है आपकी सूझ-बूझ पर। अब रात के बारह बजे तक दुकानो को खुलाए रखो ताकि कलक्टर को पता लग जाए कि सारे बाजारवाले जी-जान से आपके साथ हैं, और उसके बाद घोषणा कर देना कि चूंकि रात के बारह बजे तक शहरवालो ने दुकानें खुली रखकर यह बात साफ कर दी है कि वह कांग्रेस से सहानुभूति रखते हैं, इसलिए कल की हडताल करना आवश्यक नही। बात तो ठीक थी पर कलक्टर चुनौती दे चुका था। इस वालटियर को भी उसने कह दिया कि "हम भी कोटवाली इन्टजार करेगा। अगर टुम्हारा डिक्टेटर जलूस करेगा टो हम गोली चला डेगा।" रात के साढे दस बजे तक दुकानें खुली रखकर मैंने घोषणा करा दी, "डिक्टेटर साहिब की आज्ञा है कि कल की हडताल लाज़मी तौर से होगी।" कलक्टर अपने बगले चला गया था। मुझे बहुत आशा थी कि यह वालटियर तो पकडा ही जायेगा, पर यह भी सही-सलामत वापिस लौट आया। अब करूँ तो क्या करूँ।

बेचारी शर्मदा

मैं अपने ग्राम अजबपुर लौट आया। बीबी खाना लिए परेशान बैठी थी। खाना खाकर मेरे जेल जाने की तैयारी मे किताब और कपडे बँधने लगे। आशा थी कि रात-रात मे गिरफ्तार हो जाऊँगा। जब भी किसी ताँगे की आहट हो, या

मोटर का हार्न बजे, तो शर्मदा फ़ौरन खिड़की से झाँके कि पुलिस आ गयी। सारी रात बातों मे कट गई। आज इस घटना को तीस वर्ष हो गए पर "मैं इकली कैसे रहूँगी" कहकर शर्मदा का चीख मारकर रो पड़ना मुझे आज भी कल की सी बात लगती है। क्योंकि आज मैं स्वयं उस पीडा को भोग रहा हूँ। मैंने उसे बीसियों तरह समझाया पर रोना दिल का होता है दलील का नही। फिर मैं भी रो पड़ा, और मैंने कहा, "जेल तो जाना ही होगा, यदि तुम्हे रोता छोड़कर गया तो जब तक वहाँ रहूँगा तुम्हारा विलाप मुझे रुलाता ही रहेगा।" यह उसकी समझ मे आ गई और वह कहने लगी, "जेलवाले हम दोनों को एक साथ नही रख सकते ?" कैसी भोली और प्यारी बात कही थी वह, कि अब भी उसे याद करके प्रेम से पुलकायमान हो जाता हूँ। अब चार बज गये। शर्मदा ने कहा, "हडताल तो हो नही सकती, यह कलक्टर तुम्हें परास्त करने के बाद ही पकड़ेगा।" मैंने कहा "मै बाईसिकल पर जाता हूँ। अँधेरे-अँधेरे मे हड़ताल की मुनादी करूँगा और पौ फटते ही कांग्रेस दफ़्तर के सामने आ जाऊँगा। तुम उमा को शाल मे लपेटकर वही चली आना ताकि गिरफ़्तारी तीनो की साथ ही हो जाये।" यह बात उसे पसंद आ गयी और उसने भी अपनी किताब, बिस्तरे ठीक कर लिए और दफ़्तर आ गई।

इधर मैंने बिगुल बजा-बजाकर निम्नलिखित घोषणा करनी आरम्भ कर दी :

"आराम की नीद सोनेवाले बहन-भाइयो, मैं

महावीर त्यागी, डिक्टेटर, जिला देहरादून, बोल रहा हूँ। मैं आपको सूचना देना चाहता हूँ कि ब्रिटिश कलक्टर ने हमें चुनौती दी है कि कल को बाजार में गोली चलेगी।…………मेरी आपसे अपील है कि, आज अपने किसी भी बच्चे को घर से बाहर मत जाने देना। यदि कोई बच्चा स्कूल जाते हुए गोली का निशाना बन गया, तो मैं और मेरी वार-कौंसिल उसकी जिम्मेदार नही होगी। यदि बड़े गोली से मर भी जायें, तो 'शहीद' कहलायेंगे, पर छोटे बच्चो को बचाओ।"

सारे शहर में घोषणा कर चुकने के बाद मैं आश्रम चला आया। शर्मदा बेचारी अपनी बच्ची को लिये फाटक पर खड़ी थी। आते ही मैंने अपने स्वयसेवको को ललकारा—"सिर से कफनी बाँधकर सामने आओ।" सब लाइन बाँधकर सामने आ गये। भारतमाता के वे लाल! आज 'मिनिस्ट्री' के नशे मे हम उन्हे भूल गये। कैसे भोले-भाले थे वे, गाधी के नाम पर सदा जूझने को तैयार। उनमे से चार को मैंने बाईसिकिल पर शहर से तीन मील दूर यह कहकर भेज दिया कि, जो भी ग्रामवासी दूध, सब्जी, अन्न-भरी बैलगाडियाँ, या ईंधन लदा घोडा लाता नजर आये, उसे रोककर कहना, "त्यागी महाराज ने भेजा है। फौरन वापस लौट जाओ। आज शहर में हड़ताल है और गोली चलने का भय है। कही तुम्हारा घोडा या बैल मारा गया, तो रोते फिरोगे।" बाकी स्वयसेवको की ड्यूटी मैंने बाजार मे लगा दी और उन्हे समझा दिया कि, सब दुकानदार घर से एक साथ नही आते हैं, वे एक-एक करके आते हैं।

तुम्हे जैसे ही कोई दुकान की ओर बढता दिखायी दे, वैसे ही ज़ोर से आवाज लगाना :

"ख़बरदार, जो ताले को हाथ लगाया। याद रखना, सारे काग्रेसवाले तुम्हारी दुकान पर जूझ मरेगे। यही चलेगी गोली। तुम्हारी तरह जितने भी आये सब वापिस चले गये। कोई दुकान खुली है कि, तुम्ही 'नक्कू' बनना चाहते हो?"

जितने दुकानदार आये उन्होने बाकी दुकाने बन्द देखी और सचमुच वापस चले गये। गोकि पहली बार तो बोलते समय यह झूठ ही था, पर बाद मे सत्य हो गया, क्योकिएक-एक करके सभी दुकानदार आये और वापिस गये। उस दिन जैसी हड़ताल तो कभी नही हो सकती। सारी दुकाने, सारे स्कूल, सारे सिनेमा, सारे सरकस और सारी सडके बन्द पडी थी।

मुझमे तो भला इतनी हिम्मत कहाँ थी, पर गरीबी के गरूर मे शेर की तरह गरजता फिरता था। जिधर निगाह करता, उधर ही प्यार, मुस्कान और मस्ती की झलक मिलती। महात्मा गाधी ने अपने तपोबल से सबको सचमुच एक सूत्र मे बाँध रखा था। मैं शेख़ी मे फूला नही समाता था। घूमने निकलता तो छतो और छज्जो पर बैठी बहनें मेरी ओर उगली उठा-उठाकर इशारा करती—"वह देखो, वह देखो त्यागन का पति।" आठ-नौ बजे तक तो लोग घर से निकले ही नही, पर उसके बाद सारे स्त्री-पुरुष हड़ताल की सैर करने निकल पडे। ज्योही मुझसे उनकी आँखें चार होती, वे 'जयवार'

मर उठते ।

थोड़ी देर बाद, मेरे पीछे एक भीड़ इकट्ठी हो गई। किसीने खबर दी कि, आढ़त बाजार में लाला शकरलाल की दुकान खुली है। बस, हम आढ़त बाजार की ओर चल पड़े। लाला शकरलाल अपनी दुकान की गद्दी पर बैठे थे। हमारे पहुँचते ही कलक्टर साहब भी पुलिस के दस पन्द्रह घुड़सवारों के साथ वहाँ आ पहुँचे। वे भी सैर करने निकले थे।

लाला शकरलाल

शकरलाल की दुकान के सामने, घोड़ा रोककर कलक्टर मि० ऐवटन ने कहा, "टुम बड़ा का लायसेंसदार है, लाला शकरलाल। टुम डुकान बड नही करेगा।" शकरलाल हाथ जोडकर खडे हो गये और बोले, "हम बन्द नही करेंगे, सरकार।" अब कलक्टर साहब ने हमारी तरफ रुख करके कहा, "वैल मि० ट्यागी, इस डूकान को बड करने सकटा है, टो हम डेखना मागटा है। टुम हिम्मट करेगा?" मैंने कहा, "कोशिश करता हूँ। आप जरा अपने घोडे को एक तरफ कर लें।" फिर मैं पीछे हटता-हटता सडक की दूसरी ओर सामने की दुकान के पास आकर खडा हो गया। मेरे हाथमें आवाज लगाने का टीन का भोपू था और बगल में एक शालसे लिपटी हुई दो वर्ष की बच्ची उमा थी। शर्मदा के हाथ मे झंडा था। उमा को भी शर्मदा के सुपुर्द करके, मैंने एक टांग आगे और एक पीछे रखी और अपना भोपू मुँह से लगाकर, लाला शकरलाल की ओर ऐसा निशाना लगाया कि, जैसे बदूक का लगाते

है। वस, जैसे किसी नजरबन्दी के खेल में खामोशी हो जाती है, वैसे ही मैंने देखा कि, दो-ढाई सौ की भीड़ बिल्कुल शात खड़ी मेरी ओर देख रही थी। कलक्टर को छोड़कर बाकी सबकी सहानुभूति मेरे साथ थी। मैंने अनुभव किया कि, मौन मे जो शक्ति है, वह शब्दो मे नही हो सकती, क्योकि उद्देश्य स्पष्ट हो जाने पर, यदि दाता की आँखो मे आँखे डालकर शात खडे हो जाओ, तो एक-एक पल कटना कठिन हो जाता है।

एक बार शकरलाल की ओर शाति से देखने के वाद, मैंने कलक्टर से उसका घोडा थोडा और पीछे हटाने को कहा और पीली पगडीवाले एक सज्जन से कहा कि, "तुम्हारी पगडी का रग मेरा ध्यान आकृष्ट कर लेता है, इसलिए तुम इधर आ जाओ।" फिर अपना एक घुटना जमीन पर टेक-कर मैंने भोपू का निशाना बाँधा और बीच मे रुक-रुककर (एक बिन्दी बराबर है एक सैकिंड के) नीचे लिखी घोपणा की :

"क्यो जी लाला शकरलाल······लाला··· शकरलाल ? याद रखना, लाला शकरलाल······सारे शहर के मुकाबले में तुमने शकरलाल··· अपनी दुकान खोली है लाला शकरलाल··· याद रखना लाला शकरलाल······यदि ब्राह्मण-वश से हूँ, तो लाला शकरलाल··· मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि, सूर्यास्त होने से पहले तेरी अनाज (अन्न) को ढेरियो को बगल मे अपनी···, अपनी पत्नी···, अपनी बच्ची और अपने वालटियरो की··· लाशो की··· ढेरियाँ लगा दूँगा लाला शकरलाल···और शाम

को हमारा खून" तेरे सिर पर चढ़कर बोलेगा, लाला शंकरलाल ! बता रे लाले··· पहले अनाज की ढेरी को हाथ लगाते हो, या ब्राह्मण-परिवार की हड्डियों को ? लाला, क्या जवाब दोगे ?··· शंकरलाल ' लाला' शंकर'' लाला शंकरलाल । *अपने-पराये को पहचानो लाला* '' तुम्हारे मर जाने के बाद लाला ' जब तुम्हारे बच्चे बाजार से निकलेंगे··· तो लोग कहेंगे, यह है *हत्यारे की सन्तान लाला शंकरलाल*··· बन्द करो । बन्द करो लाला ' बन्द' करो ।"

बोल तो मैं रहा था, पर सैकड़ो स्त्री-पुरुष और बच्चों के दिल धड़क रहे थे । अचानक, लाला शंकरलाल, जो सदैव कांग्रेस की सहायता करते थे, जिनका शहर में बड़ा मान था, कूदकर गद्दी से नीचे सड़क पर आ खड़े हुए । आँखो में आँसू और विकम्पित कपोल । हाथ जोड़कर चारों ओर की खड़ी भीड़ से कहने लगे, "आज मैं किसी काम का नहीं रहा भाइयो, मुझे माफ करना ।" फिर कूदकर कलक्टर के घोड़े के सामने के दोनो पैर पकड़कर बैठ गये और बोले, "हुजूर, मेरा मुँह काला हो गया ।" फिर मेरी स्त्री के कन्धे पर हाथ धरकर बोले, "बेटी ! मुझे माफ करवा दे ।" फिर पागल की तरह ज़ोर-ज़ोर से चीख मारकर बोले, ' त्यागीजी, माफ करो । मैं किसी काम का नहीं रहा । बन्द करो । बन्द करो । आग लगा दो इस दुकान में । मेरा मुँह काला हो गया ।" बाहर जो अन्न की ढेरी लगी थी, उसको बोरी से ढाँककर बोले, "फूंक दो इस ढेरी को । मैं अभागा, त्यागी की ढेरी को नहीं देखना चाहता ।" मुनीमों ने दुकान

बन्द कर दी।

लोगों ने 'जय' बोलनी शुरू की, तो कलक्टर का घोड़ा बिदक गया। मैंने ललकारकर कहा, "यह क्या बदतमीजी है? मैं कलक्टर को घोड़े से गिराना नहीं चाहता, इसके राजा का तख्त उलटना चाहता हूँ।" तभी सँभलकर वह अंग्रेज मेरे पास आया और अंग्रेजी मे कहने लगा, "मि० त्यागी, धन्यवाद। मेरी बधाई स्वीकार करो। पर तुम्हें मालूम है कि, यहाँ दफा १४४ लगी है··· कि पाँच आदमी से ज्यादा की भीड़ कोई इकट्ठी नही कर सकता।" मैंने कहा, "पाँच आदमियों से ज्यादा कहाँ है?" उसने पूछा, "तुम्हारा क्या मतलब है?" मैंने कहा, "डिक्टेटर त्यागी··· एक। डाटर त्यागी···दो। मैडम त्यागी—तीन। त्यागी का झंडा··· चार। त्यागी का कलेक्टर···पाँच।"

वह हँसकर बोला, "ये लोग त्यागी के कुछ नही लगते?"

मैंने जोर से कहा, "भाइयो, तुम लोग कलक्टर साहब की वजह से आये हो?"

"हाँ, हाँ," जवाब मिला।

कलक्टर हँसकर चला गया, हमे पकड़ा नही। कुछ भी कहो, अंग्रेज थे अच्छे। ईश्वर उनकी नस्ल को सही-सलामत रखे।

फिर सी० आई० डी० वालों ने खबर दी कि, जल्सा मत कर बैठना, वह कह गया है कि जल्से मे खुलकर लाठी चार्ज करो और हमारा बदला लो। यह सुन, मैंने खुद घटा

पीट-पीटकर मुनादी कर दी, "चूँकि अंग्रेज़ी सरकार ने जल्से पर दफा १४४ लगा दी है, इसलिए मेरी वार-कौंसिल ने फैसला किया कि है कि ठीक शाम के ५ वजे हम जिले भर में १४४ जल्से करेंगे। हर जल्से से पहले एक बम का गोला छोड़ा जायेगा, ताकि दुश्मन को भी पता चल जाये।" फिर मैंने अपने स्वयंसेवकों की ड्यूटी लगा दी—सादे कपड़ो मे अमुक-अमुक स्थान पर छिपे बैठे रहो। ठीक ५ वजे बम का पटाखा छोड़कर और अपनी लाठी मे झंडा लगाकर आवाज़ लगा देना, "दफा १४४ तोड़ डाली। दफा १४४ तोड़ डाली।" फिर हमारी छपी हुई घोषणा पढ़कर सुना देना। बस, इस तरह शाम के ठीक ५ वजे शहर मे दसियो जगह जल्से करके दफा १४४ तोड़ी गई, फिर भी हममे से कोई गिरफ़्तार नही हुआ।

दस

श्रीचरणों की साक्षी

महात्मा गाधी देहरादून क्या आए कि मेरी उम्र ३० वर्ष से घटकर १५ की रह गई और सिर पर स्कूल के बच्चोवाली शैतानी सवार हो गई। मुंह आई बकने लगा और मनमानी करने लगा। न जाने किस नशे में चूर था मैं, कि चाल-ढाल, बात-चीत, कहना-सुनना और उठना-बैठना, सब ऐसा बदला कि मानो कोई औलिया हो गया हूँ। करता भी क्या? शहरवालो ने पागल बना रखा था। मैं तो फिर भी एक छोटा-सा आदमी था, अच्छे-अच्छो के दिमाग फिर जाते है, जब चारो ओर से लोग उनका नाम ले-लेकर पुकारने लगते हैं। माँग बढ जाने पर मेथी-पालक तक के भाव चढ जाते हैं।

वे भी क्या दिन थे, क्योकि लाहौर काग्रेस मे पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पास हो जायगा, ऐसी आशा थी। जवाहरलाल नेहरू ने काग्रेस के अन्दर नौजवान भारत सभा की स्थापना कर दी थी, जिसके द्वारा ये काग्रेस के प्रोग्राम को अधि-काधिक उग्र बनाना चाहते थे। वैसे तो ये महात्मा गाधी के बहुत कायल थे, पर अपनी जवानी के जोश से तग थे, और

जब-जब मौका मिलता महात्मा गांधी और मोतीलालजी आदि से मछर जाते थे। कांग्रेस में भीतरी पार्टी बनाने का श्रीगणेश भी इन्ही बुजुर्ग ने किया था। जैसे कि नौजवान भारत सभा, इण्डिपेंडेंट लीग, सोशलिस्ट पार्टी आदि। वैसे तो इनकी बातें हमें भी प्यारी लगती थी, पर हम आंख मीचकर गांधीजी के साथ थे। और कांग्रेस के अन्दर कोई भी दूसरा दल नही होना चाहिए, इस मोर्चे पर डटे थे। जवाहरलाल के दरबारी लोग हमको दकियानूसी, कट्टरपंथी, 'नो चेंजर' और 'गांधी के गधे' कहा करते थे। थोड़े दिन बाद हम लोग खुद भी अपने को 'गांधी के गधे' कहने लगे। कुछ भी सही, थे तो गांधी के। यहां श्री बालकृष्णशर्मा 'नवीन' का एक शेर याद आ गया :

गाधी ने हम गधो को भेजा है जेलखाने !
तसले बजा-बजाकर अब हम स्वराज्य लेंगे ! !

इसी सिलसिले में उनका एक और कथानक है। फ़तेहगढ जेल का सुपरिंटेंडेंट आये दिन इनसे शिकायत करता रहता कि आपके साथी मशक़्कत (काम) कुछ नही करते हैं। शर्माजी ने एक दिन तंग आकर साहब बहादुर से कह दिया, "वह बैल होते हैं कि जो कधो पर जुआ रखकर मशक़्कत करते हैं, हम तो गाधी के गधे हैं, छुट्टे खेती चरते हैं।" वह नमस्कार करके चला गया, फिर शिकायत नही की। सोशलिस्टवालों से हमारी 'लाग-डांट' रहती थी और इन लोगो को आसमानी नेता कहकर हम कांग्रेस कमेटियों के चुनाव में इनसे रटाका लिया करते थे। फिर भी आपस मे हँसना-बोलना और गाली-

गलौच होती रहती थी, क्योकि चाय-पानी साथ-साथ करते थे। आज भी श्री मोहनलाल गौतम हमे 'प्यारा दुश्मन' कहकर पुकारते है। हमारी दुश्मनी भी आजकल की इश्कबाजी से कही प्यारी और पवित्र थी, क्योकि उन दिनो 'जाँ-बाजी' के रिश्ते थे, आज 'टिकट-बाज़ी' के नाते हैं।

सन् १६२६ के अन्त मे तरह-तरह की बातें हवा मे थी। कुछ लोगो का कहना था कि अब की बार आन्दोलन में केवल जेल ही न मिलेगी, बल्कि शायद गोलियो तक का सामना करना पडे। और यह भी अफवाह गरम थी कि अग्रेज सरकार तमाम काग्रेसियो को जहाजो मे भर के समुद्र-पार अफ्रीका आदि भेज देगी। हमे यह जानने की स्वाभाविक उत्सुकता थी कि क्या होने जा रहा है। महात्माजी ने काग्रेस-कार्यकर्ताओ से बातचीत करने की स्वीकृति दे दी। बडे उत्साह से दूर-दूर के काग्रेसी कार्यकर्ता आये और रात को गाधीजी के निवास-स्थान पर इकट्ठे हुए। तरह-तरह के सवाल होने लगे। वे चरखा भी कातते जाते और जवाब भी देते जाते।

मेरे मित्र वैद्य अमरनाथ ने गाधीजी को उलाहना देते हुए कहा, कि "जिस श्रद्धा और भक्ति से लोग आपको अभिनन्दन-पत्र देते है, आप उनकी बहुत अवहेलना करते है, क्योकि उनके देखते ही देखते तमाम अभिनन्दन-पत्रो को नीलाम कर देते हैं।" गाधीजी ने कहा, "तो क्या करूँ?" वैद्यजी ने जवाब दिया, "यह इतिहास के बहुमूल्य पन्ने हैं, इन्हे सुरक्षित रखना चाहिए।" गाधीजी बोले, "मेरे पास तो

इतना बडा घर नही, मैं इन्हें कहाँ रखूंगा ?" वैद्यजी ने कहा, "किसी अद्भुतालय में भेज दीजिए।" "अद्भुतालय म इन कागजों को कौन रखेगा ?" गाधीजी फिर बोले, "अगर तुम कोई ऐसा अद्भुतालय बना लो तो मैं तुम्हारे पास भेज सकता हूँ।" वैद्यजी ने कहा, "हाँ, हम बनवा लेंगे।" गाधीजी ने कहा, "तो फिर, उसमें मेरे भी रखना और मोतीलाल नेहरू के भी।" उन्होने कहा, "हा जी, सब रख लेंगे।" फिर गाधीजी ने शर्मदा की तरफ इशारा करते हुए कहा, "इसके भी रखना।" वैद्यजी बोले, "इनको तो अभी कोई मिले नही।" गाधीजी ने कहा, "ऐसा ? तो फिर इसको तो मैं अभी २०-२५ दे दूंगा।" मायूस होकर वैद्यजी बोले, "अच्छा बापू, तो फिर यह समझा जाए कि देश की यह बहुमूल्य सम्पत्ति कभी एकत्रित न हो सकेगी, क्योकि आपकी बात तो पत्थर की लकीर होती है।" गाधीजी बोले, "ऐसा ? लोग तो मुझे कहते हैं कि मैं जल्दी-जल्दी बदल जाता हूँ।" मेरे फिट्टे मुंह से निकल पडा, "मेरा ऐसा ही विश्वास है बापू।" गाधीजी को यह बात पसद न आई। उन्हे मुझसे आशा नही थी कि कार्यकर्ताओ के बीच मे बैठकर ऐसी बदतमीजी करूंगा। मेरी तरफ गर्दन घुमाकर गाधीजी ने कहा, "क्यो ? तुम भी ऐसा समझते हो ?" मैंने कहा, "जी हाँ, पुराणो की कथा है कि जो गाय की पूँछ पकडता है, वैतरणी पार हो जाता है और भैंस की पूँछ पकडनेवाले को बीच धारा मे गोते खाने पडते हैं। आपके साथ क्या हुए, हमने तो भैंस की पूँछ पकड ली है। पता नही कहाँ गोता खाना पडे। क्योंकि जितने आन्दोलन आपने शुरू किये, सब

बीच में ही ठप्प कर दिये। दक्षिण अफ्रीका में यही हुआ, और सन् १९२०-२१ में जब खिलाफत आन्दोलन खूब जोरों पर आ गया तो चौरी-चौरा की छोटी-सी घटना के बहाने आपने उसे भी ठप्प कर दिया। अब फिर आन्दोलन करेंगे, मालूम नहीं कहाँ ले जाकर डुबकी दे दें।" मेरे सिर पर होनी सवार थी, गुस्ताखी पर गुस्ताखी करता गया। बापू को गुस्सा आ गया। बोले, "ऐसा है ?" मैंने कहा, "जी।" "तो फिर एक बात पूछूंगा, तुमने अपनी रजा से भैंस की पूंछ को पकड़ा है ना, पूंछ ने तो तुमको नहीं पकड़ा ?" मैंने कहा, "नहीं।" "बस तो हो गया, फिर तो तुम पूंछ को छोड़ सकते हो।"

अरे इतना कहना था कि मेरे प्राण सूख गए। करता क्या, ऐसा थप्पड़-सा लगा कि मुँह पीला पड़ गया, नीचे से ज़मीन खिसक गई। साथी कार्यकर्ताओं ने सोचा, अब मीटिंग चलाना ठीक नहीं। "बापू को आराम करने दो" कहकर सब खड़े हो गए। मैं भी खड़ा हो गया। पर मेरी लाश खड़ी थी, जान तो निकल चुकी थी। पूंछ को छोड़कर कहाँ जाऊँ ? दिमाग चक्कर खाने लगा। मेरी तो सारी दुनिया उसी पूंछ में सीमित थी। फिर भी मैंने इतना कह दिया, "आपके लिए आसान है कहना कि छोड़ दो पूंछ को। मझधार में कैसे छोड़ दें, क्या डूब मरें ? हम तैरना जानते तो पूंछ ही को क्यों पकड़ते ? जिस किनारे से पकड़ा है, पहिले उसी किनारे पहुँचा दो और उम्र भी घटाकर २१ वर्ष की कर दो।" बापू इसपर भी न हँसे।

शर्मदा (मेरी पत्नी) ने महात्मा गांधी से कहा, "बापू,

मैं तो नाखून कटवाकर आई थी अपनी उँगलियों के।" बापू ने मुस्कराकर कहा, "पैर नहीं छूने दूंगा।" और ऐसा कहकर बापू ने अपने पैर चादर मे ढक लिये। बेचारी शर्मदा खड़ी की खड़ी रह गई, लजीली-सी। मैंने कहा, "अरी देखती क्या हो, कहीं पैर छूने को भी इजाज़त लिया करते हैं? इन्हें क्या हक है मना करने का? इन चरणों में ३२-३३ करोड़ आदमियों का साझा है, तुम अपने हिस्से के छू लो।" मेरा इशारा पाकर उसने चादर उघाड़ी और दोनों पैर पकड़कर बैठ गई। महात्मा गाधी ने मुंह पर एक चांटा दिया और कहा, "पगली है यह।" फिर बोले, "जैसी यह पगली है, वैसा ही वह भी पगला है।"

बस यह कहना था कि मेरी जान मे जान आ गई! मानो सूखा पेड़ हरा हो गया। 'पागल' की उपाधि पाते ही सिर मे अक़्ल आ गई, उनके एक-एक शब्द मे कितनी शक्ति थी! मुझे ज़िन्दा कर दिया। चोर-सा खड़ा था, पागल बनते ही आत्मा पवित्र हो गई। शर्मदा ने बचा लिया। हमारे मुसीबत के दिनों की संगिनी, ईश्वर उसकी आत्मा को शान्ति दे।

इसी तरह एक बार फिर स्वतन्त्रता मिलने से कुछ ही महीने पहिले गाधीजी मसूरी आ गए। इस बार विश्राम के लिए आए थे, इसलिए काफी अर्से रहे और 'बिड़ला हाउस' मे ठहरे। बड़ी मौज रही। दिन-रात साक्षात् होता, उनकी बातें भी सुनते और 'सेवा' का गौरव भी लूटते। जब जी चाहता किसी न किसी बहाने उनके कमरे मे चले जाते। शाम को प्रार्थना होती।

एक दिन मुझसे रहा न गया, अकेले पाकर मैंने उसी तरह दोनों चरण पकड़ लिए कि जैसे २० वर्ष पूर्व शर्मिंदा ने देहरादून मे पकड़े थे। वे धूप मे चटाई पर बैठे कुछ लिख रहे थे। नाराज़ नही हुए बल्कि करुणा-भरी आँखो से मेरी ओर देखने लगे। मैंने भी आँखो मे आँखे उतार, ली। कुल १० सैकिण्ड मेरे हिस्से के थे, सो वसूल कर लिए। पर चूँकि अपने जीवन के सबसे ऊँचे शिखर पर पहुँच गया था, इसलिए यह १० पल ऐसे बीते कि जैसे आत्मा शरीर के भार को नीचे छोड़ आई हो। इतने मे गाधीजी बोले, "आज तेने ऐसी बेवकूफी क्यूँ की ? पैले तो ऐसा नई करता था।" २७ वर्ष बाद चरण लिए थे, रोमाच तो था ही, सहसा मेरी आँखे मिच गई और दोनो हाथ वदना मे जुड गए। दर्श और स्पर्श दोनो से वचित, मैं ऐसा स्तब्ध-सा रह गया कि मानो कही चोरी करते पकडा गया हूँ। बापू ने फिर पूछा, "बोलो।" मैंने क्षमा-याचना करते हुए कहा, "'इस मानस गात' को 'चरण-पुनीत' छूने का कभी साहस ही न हो सका।" "तो आज कैसा हुआ ?" बापू ने पूछा। मैंने उत्तर दिया कि, "शुभ चरणो की साक्षी एक प्रतिज्ञा कर ली है, बापू।" "वह क्या ?" मैंने कहा, "बरसो से प्रयत्न कर रहा हूँ। आत्म-बल की कमी के कारण मेरा कोई भी प्रण, 'प्रतिज्ञा', और 'व्रत' सफल नही हो सका :

झूठ नही बोलूंगा	—	बोलता हूँ
सिगरेट नही पियूँगा	—	पीता हूँ
गुस्सा नही करूँगा	—	अधिकाधिक
दैनिक व्यायाम	—	नही करता

'साला' कहने की आदत — नही छूटी
दैनिक चरखा — नही

"ऐसी निर्णय-विहीन आत्मा को दुनिया से छिपाने के लिए परदों में लपेटे फिरता हूँ। आज एक छोटी-सी प्रतिज्ञा की है कि, 'जिन हाथों से चरण छुए हैं उनसे किसीका अनहित न करूँगा। शुभ चरणों के प्रताप से शायद निभ जाए।"

यह सुनकर बापू ने 'आर-पार' होने वाली आँखों से क्षण-भर में मेरी आत्मा का 'एक्सरे' कर लिया और गर्दन हिला-कर बोले, "अच्छा व्रत लिया।" एक बार फिर देखा—इस बार बापू ने पाया होगा कि आत्मा इतनी मलीन नही रही जितनी पहिले थी। तेज़ी से स्वस्थ हो रही थी। उन्होने फिर कहा, "अच्छी प्रतिज्ञा की, इसके बाद किसी दूसरी प्रतिज्ञा की आव-श्यकता नही। वो तो एक के साधे सब सध जाता है। तुम अपना कोट खूँटी पर टाँगो तो उसके साथ आस्तीन और जेब सब टँग जाएगी, अधिक ऊँचा करो तो अकेला कालर ही ऊँचा नहीं उठेगा, सारा कोट उठेगा। तो फिर तुम्हारा यह व्रत निभ जाने से सम्पूर्ण आत्मा को बल मिलेगा—फिर सिग्रेट भी छुट जाएगी। अच्छा व्रत लिया। ऐसा चरण तो रोज़ छू सकते।"

इस आशीश से बल मिला, और आत्म-विश्वास भी। अब कहाँ जाऊँ ?

ग्यारह

बिछुआ चू गया

दिसम्बर का महीना—सर्दी का मौसम। मैं किसी किसान-सभा के जल्से मे सम्मिलित होने के लिए कांग्रेस के कुछ साथियो के साथ, सिवहारे (बिजनौर) की सडक से, इक्के की सवारी मे सफर कर रहा था। हमारे आगे-आगे एक और इक्का जा रहा था, जिसमे दो स्त्रियाँ बैठी थी। हम किसी काम से रास्ते मे घटा भर रुक गए और लोगो से बाते करने लगे। फिर चले, तो पाच मील बाद क्या देखते हैं कि, वह इक्का जो हमारे आगे-आगे जा रहा था, खडा हुआ है और वे दोनो स्त्रियां घास मे बैठी, सिर पीट-पीटकर ऐसा विलाप कर रही हैं कि, जैसे उनका कोई मर गया हो। हमने अपना इक्का रोका और उतरकर उन देवियो के पास गए। लहँगा, चोली और ओढनी पहने वे दोनो देखने मे रमैयो के परिवार की सी लगती थी। जिला बिजनौर मे एक बिरादरी रमैयो की कहलाती है। वे लोग फेंटा (गठरी) बाँधकर इधर-उधर बिसातखाने का सामान बेचने का कार्य करते हैं। भारतवर्ष मे ही नही, बल्कि अफ्रीका तक ये फेरी लगाते हैं। वे दोनों सास-बहू थी। हमने पूछा, "भाई, क्या हो गया, जो तुम विलाप

कर रही हो?" बुढ़िया ने रोते-रोते बताया, "बेटा, हमारी तकदीर फूट गयी। अच्छे-बिच्छे जा रहे थे बम्बई को। यह मेरी बहू है। अभी तीन बरस भी नही बीते इसके ब्याह को। मेरा इकला बेटा था, भैया। आज उसका जहाज आनेवाला था। उसीकी बात करते हुए जा रहे थे कि बहू के पैर से बिछुआ छू गया। हाय! मेरे पूत, मैंने बड़े दुखो से पाला था। क्या इसी घड़ी को रचायी थी कल मेहदी बहू ने?"

मैंने कहा, "अफ्रीका से आ रहा था?"

उसने कहा, "हाँ।"

मैंने पूछा, "वहाँ फेरी लगाता था?"

"हाँ, मेरे चंदा!" उत्तर मिला।

"उसके मनीआर्डर भी तो आए होंगे?"

"हर महीने सौ-पचास भेजे था।"

"तो माई, मुझे हाथ तो दिखा।"

उसका हाथ देखकर (मैं हाथ मारना तो जानता था पर देखना नही जानता था) मैंने कहा, "तेरा लड़का बचपन मे बहुत बीमार रहा होगा?"

"हाथ में लिखा है क्या? वह तो मरते-मरते जिया है।"

मैंने पूछा, "कोई लडकी भी है?"

"ना।" जवाब मिला।

मैंने कहा, "तो फिर लड़का ज़िंदा है।"

"तेरे बेटा जीता रहे। क्या यह भी लिखा है हाथ मे?"

"ना, यह नही लिखा, पर तेरे दो पोते लिखे हैं। लडका ज़िंदा न रहा तो पोते कहाँ से आयेंगे। ज़रा अपनी बहू का

हाथ भी दिखा।"

चट से बहू ने घास से मेंहदी छुड़ाकर हाथ सामने कर दिया।

मैंने उसका हाथ देखकर कहा, "तेरे दो लड़के और एक लड़की लिखी है। पर तेरे पति के घुटने में चोट लिखी है। कोई पौन घंटा हुआ, जहाज से उतरते हुए उसका पैर फिसल पड़ा, उसके सिर पर भारी बक्स था, सो कीचड़ में गिर गया। फिर बक्स में जो तेल की शीशी थी, वह फूट गयी और उसका तेल चू पड़ा और आँख में तेल से मिर्ची-सी लग गयी। चार आने पैसे देकर कांग्रेस की मेम्बर बन जा। महात्मा गांधी की कृपा से तेरा आदमी तुझे रेल के स्टेशन पर हँसता हुआ मिलेगा।" दोनों मेम्बर हो गये। और बुढ़िया ने मेरे सिर पर हाथ धरकर आशीर्वाद दिया, "जीता रहो, पंडत। तेरे बेटे-पोते जीते रहें।" फिर दोनों हँसती हुई इक्के में बैठ गयीं। हम भी अपने काम पर चले गए। मुसीबत में ज़रा-सा सहारा भी लग जाये तो गुण देता है।

बारह

मजिस्ट्रेट को प्राणदान

सन् १९२१ में एक तरफ तो स्कूल, कालेज और अदालतों का बायकाट और दूसरी तरफ विलायती कपड़ों के बहिष्कार का आन्दोलन ज़ोरों पर था। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की आज्ञानुसार हमें जगह-जगह से विलायती कपड़े इकट्ठे करके होलियाँ जलानी थीं। हम लोगों ने घर-घर कपड़े माँगने शुरू कर दिये।

श्री विश्वमित्र, वकील, उन दिनों बिजनौर में वकालत करते थे। इनकी धर्मपत्नी, ज्ञानवतीजी, को मैं जानता था, क्योंकि वे मेरठ के पुराने कांग्रेसी नेता बाबू ज्योति प्रसाद की बहिन हैं। मैं उनके घर गया तो विश्वमित्रजी ने पूछा, "क्या सेवा कर सकता हूँ ?" मैंने उत्तर दिया, "सबसे बड़ी सेवा यही है कि शरम की झूल उतार फेंको।" इतने में ज्ञानवती-जी ने कुछ रेशमी साड़ियाँ सन्दूक से निकालकर हमारे सुपुर्द कर दीं। स्त्री को अग्रसर देखकर विश्वमित्र को ज़रूर कुछ शर्म आयी होगी क्योंकि उन्होंने छड़ी से अपने गरम कोट को खूंटी से उतारकर मुझे दे दिया। विलायती कपड़े माँगते हुए हम ऐसे लगते थे कि जैसे सूरज ग्रहण के समय दान माँगनेवाले

ब्राह्मण और कपड़ा माँगनेवाले मेहतर। विश्वामित्र के कोट को अपने गधे पर लादकर मैंने एलान कर दिया कि विश्वमित्र कांग्रेस के मेम्बर हो गये। वह तो सचमुच ही हो गये। उनके दूसरे साथी नेमीशरण जैन थे जिन्होंने नयी वकालत शुरू की थी, बड़े उत्साही युवक थे। हम उनके घर पहुँचे और नये मुँडे फकीर, विश्वमित्र को भी साथ ले गये। हम लोगों की सूरत देखते ही नेमीशरण जैन समझ गये। अपनी स्त्री से परामर्श करके उन्होंने भी अपने विलायती कपड़े उतार दिये। ये भी कांग्रेस में आ गये।

जब काफ़ी कपड़े इकट्ठे हो गये तो हमने बिजनौर में एक बहुत बड़ा जुलूस निकाला। प्रचार-कार्य में इसका ध्यान रखना पड़ता है कि कौन काम या कौन-सी बात ऐसी है जो लोगों को ज्यादा से ज्यादा आकर्षित या उत्साहित कर सके। हिन्दुस्तान की गरीब जनता तो आधी नगी या फटे-पुराने कपड़ों से अपना गुजारा करने की आदी थी। केवल अंग्रेज और उनके पिछलग्गू लोग ही हैट-कोट और टाई-पतलून पहनते थे। इसलिए हैट उछालने के माने अंग्रेजों की 'टोपी उछालना' था। जुलूस में आगे बाजा, फिर हैट, कोट और पतलून से सुसज्जित कुछ गधे (सचमुच के), जिनके गलों में एक-एक टाई बंधी थी, और उनके पीछे हम लोग 'अंग्रेजी राज्य का नाश हो', 'विलायती कपड़े फेंक दो' के नारे लगाते हुए जा रहे थे। हर घर के सामने जुलूस खड़ा होकर नारे लगाता और जब घरवाले कुछ विलायती साड़ी या कोट-कमीज़ दे देते तो उनको गधों पर लादकर आगे बढ़ जाता था। अभी हमारा जुलूस बाजार में

पहुँचा ही था कि कोतवाल और कुछ पुलिसवाले जुलूस के अन्दर घुस आये और मुझको गिरफ्तार करके ले गये। मेरे बाद श्री जगदीश दत्त सोती ने जुलूस का चार्ज ले लिया और श्री द्वारिकाप्रसाद, मुरारीलाल वैल, अब्दुल लतीफ और जहूर साहब जुलूस को लेकर आगे बढ़े। मुझे एक मोटर मे बिठाकर नगीना ले जाया गया और वहाँ से बुलन्दशहर। कुछ महीने पहले जब जिला बिजनौर मे मेरी ज़बानबन्दी का हुक्म दफा १४४ के अनुसार हो गया था तो दो महीने के लिए प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने मेरी ड्यूटी जिला बुलन्दशहर मे लगा दी थी। वहाँ पर जो भाषण दिये थे, उन्हींके फलस्वरूप दफा १२४ (बग़ावत) और १५३ (हिन्दुस्तानियों और अंग्रेजो मे भेद डालने) के मातहत मेरी गिरफ्तारी का वारण्ट कटा था।

अदालत मे पेशी

अगले दिन बुलन्दशहर के ज़िला मजिस्ट्रेट, मिस्टर डोब्स, की अदालत मे पेश किया गया। कई हज़ार हिन्दू-मुसलमानो की भीड थी। पहला-पहला मुकदमा, लोगो मे बहुत जोश था। मेरे हाथो मे हथकडी पडी थी जो अदालत मे भी न खोली गयी। कठघरे के सामने खडा करके अदालत ने पूछा, "कोई वकील करना चाहटा हैय ?" मैंने तिरछी गरदन करके जवाब दिया, "नाहिं"। मजिस्ट्रेट को मेरा लहजा अच्छा नही लगा। उसने त्यौरियाँ चढाकर मेरी ओर देखा। मैंने भी तिरछी भौं उसकी तरफ को घूर दिया। अहिंसा का व्रत ले

रखा था, शब्द तो कुछ न कहे, पर 'तेवरयुद्ध' में उसे २-३ पटखनियाँ दे दी। फिर गवाहो के बयान होने लगे। पहला बयान समाप्त होने पर डौब्स ने पूछा, "जिरे करना मांगटा हैय ?" "नई मांगटा" उसने फिर घूरा, मैंने भी घूर दिया। दूसरा गवाह पेश हुआ। 'जिरे' ? मेरा जवाब, 'नो'। तीसरा गवाह मेरा भाषण पढकर सुना रहा था कि डौब्स ने कोर्ट इस्पेक्टर से अंग्रेजी मे पूछा, "भाषण का अनुवाद जो प्रान्तीय सरकार को भेजा गया था, मूल भाषण से मेल नही खाता।" कोर्ट इस्पेक्टर ने चुपके से उस अंग्रेजी के अनुवाद को कलेक्टर के हाथ से लेकर यह कहते हुए अपनी जेब मे रख लिया कि, "इसको बाद में देखेंगे।"

मेरे बिखरे बाल और गम खाई सूरत को देखकर इन दोनो महानुभावो ने समझ रखा था कि मैं अंग्रेजी नही जानता। बयान खत्म होने पर मजिस्ट्रेट ने फिर पूछा, "जिरे ?" मैंने अंग्रेजी मे उत्तर दिया "जिरह तो कुछ नहीं है, पर अदालत से कुछ पूछना चाहता हूँ। पहली बात तो यह कि आपने मेरे विरोधी पक्ष से अंग्रेजी भाषा मे जो खुसपुस की है उसको रेकार्ड पर ला दिया जाय, दूसरे, मेरी फाइल का मुख्य अध्याय अर्थात् मेरे भाषण का अनुवाद जो कोर्ट इस्पेक्टर ने आपके हाथो से छीनकर अपनी जेब मे छिपा लिया है उसको बरामद करके फाइल मे शामिल कर दिया जाय और मेरे दस्तखत करा लें, क्योकि मुझे विरोधी पक्ष का एतबार नही है। तीसरे, यह बात साफ कर दी जाय कि अनुवाद मूल भाषण के अनुकूल है या नही ? क्योकि आपने अंग्रेजी मे कहा था कि यह मेल नही

खाता।" मेरे आसपास जो वकील और दूसरे लोग मुकदमा सुन रहे थे, वह इस जिरह पर खुश हुए और मुसलमानों ने जोर से 'अल्ला हो अकबर' का नारा लगा दिया। मजिस्ट्रेट का रोब किरकिरा हो गया। उसने डांटते हुए मुझसे अंग्रेजी मे कहा, "क्या तुम बैरिस्टर है? यह कोई सवाल नही है।" मैंने अंग्रेजी मे उत्तर दिया कि "बोलचाल में हर वाक्य के बाद प्रश्नसूचक चिह्न लगाना संभव नही है। अंग्रेजी व्याकरण के अनुसार मैंने हर वाक्य की क्रिया को कर्ता से पहले बोला है।"

मजिस्ट्रेट—यह सवाल नही है, तुम्हारा बेवकूफी है।

"मेरा नही, आपका।" मैंने निडर उत्तर दिया।

अब तो साहब बहादुर बौखला उठे। बड़े गुस्से से उन्होने एक पुलिसवाले को हुक्म दिया, "मुल्जिम को थप्पड़ मारो।" बेचारा कास्टेबिल घबरा गया, उसकी हिम्मत न हुई। मैंने अपनी गर्दन नीची करके सहारा देते हुए उससे कहा, "तुम्हारा कोई कसूर नही है, मूजी का आज्ञापालन करो।" उसने चुपके से मेरी गर्दन पर हल्की-सी थपकी लगा दी।

थप्पड़ के बदले जीवन-दान

मजिस्ट्रेट ने फिर चिल्लाकर कहा, "सुअर का बच्चा, मुंह पर मारो, जोर से मारो।" फिर उसने जोर से मुंह पर मार दिया। कई हजार आदमियो की भीड़ थी। उनसे बर्दाश्त न हुआ और धक्कामुक्की शुरू हो गई। कलक्टर डर के मारे कुर्सी छोड़कर दीवार से जा लगे और दोनो हाथ ऊपर उठा-

कर "खामोश, खामोश" बोलने लगे। इधर बुगरासी के एक पठान ने भीड को चुनौती देते हुए कहा, "काफिर बचने न पावे वरना बुलन्दशहर की नाक कट जायेगी।" वैसे तो मुझे भी गुस्सा बहुत था, पर अहिंसा के व्रत के कारण गुस्सा पीकर हथकडी से बन्धे दोनो हाथ जोड जनता से शान्ति की अपील करने लगा। जब भीड काबू से बाहर होने लगी तो मैंने अपने गले की मालाएँ तोड-तोडकर फूल जनता की ओर फेकने शुरू कर दिये, और बोला, "जब तुम मेरा कहना भी नही मानते तो ले जाओ अपनी मालाएँ।" लोग चुप हो गये। फिर मैंने कलक्टर की ओर घूमकर अग्रेजी मे कहा : "Thou art safe under the care of thy prisoner magistrate, sit down. I give thee thy life."

(अपने बन्दी के सरक्षण मे तू सुरक्षित है, मजिस्ट्रेट, बैठ जा। मैं तुझे जीवन-दान देता हूँ।)

मजिस्ट्रेट वैसे काफी शरीफ था। बेचारा शुक्रिया कहकर कुर्सी पर आ बैठा। मैंने कहा, "मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपकी अदालत मे कोई दूसरा सवाल न करूँगा, आप बेफिक्री से मुकदमे की कार्यवाही जारी रखें।" मजिस्ट्रेट ने कहा, "वातावरण प्रतिकूल न होने के कारण अब कार्यवाही जारी नही रखी जा सकती। आप कृपया इस भीड मे से अपने लिए रास्ता बना लीजिए और सामने जेलखाना है, उसम चले जाइए। मैं दो-चार दिन बाद फिर बुला लूंगा।" बस, मैं भीड को चीरता हुआ जेलखाने की ओर चल पडा। हाथो मे हथकडी थी और चूँकि पुलिस के दोनो सिपाही भीड मे पीछे रह गए थे, मैंने

उनके पकड़ने की पीतल की जो जंजीरें हथकड़ियों के साथ लगी थीं, उनको अपने कंधों पर डाल लिया। लम्बी थी, जो आजादी के मजनूं के पीछे-पीछे जमीन पर घिसटती जा रही थी। आगे-आगे मेरी जवानी और पीछे-पीछे भीड़ मस्तानी।

नारे लगाता हुआ यह जुलूस जेलखाने पहुँचा। पुलिस पीछे रह गई। शायद जेलवार्डर ने हमको बहुरूपिया समझा होगा (एक हद तक उसका समझना ठीक भी था), उसने हमें अन्दर लेने से यह कहकर मना कर दिया कि, "जब तक पुलिस वारण्ट न दिखायेगी, हम आपको अन्दर नहीं ले सकते।" भीड़ ने पुलिस का फाटक तक पहुँचना मुश्किल कर दिया। काफी देर तक फाटक के बाहर भाषण हुए। फिर जेल का कोई कर्मचारी पुलिसवालों से वारण्ट ले आया। अन्दर ले जाकर हमें काल-कोठरी में बन्द कर दिया गया।

चार-पाँच दिन बाद मेरे भाई धर्मवीरजी, जो काशी विद्यापीठ में प्रोफेसर थे, मुझसे मुलाकात करने आये। उन्होंने ता० १३ अक्तूबर, सन् १९२१ के 'यंग इंडिया' में गांधीजी की लिखी हुई एक टिप्पणी पढ़कर सुनाई। उसमें लिखा था, "थप्पड़ खाने के बाद श्री त्यागी ने जो यह आश्वासन दे दिया *कि अब वे कोई प्रश्न अदालत से न पूछेंगे, उससे कायरता का* आभास मिलता है।" इसको सुनकर मैं बहुत उदास हो गया। मुँह लपेटकर अपनी काल-कोठरी में आ लेटा। इतना कुछ करने के बाद भी 'कायर' कहलाया ? सजा तो हो ही जायेगी, लेकिन छूटकर कहाँ जाऊँगा ? क्योंकि गांधीजी का 'यंग इण्डिया' तो दुनिया-भर में पढ़ा जाता है और उनकी कही बात

तो देश भर की आवाज़ मानी जाती है। भारतमाता ने गोदी से झटक दिया कि "कायर है।" यह सब बातें दिमाग मे घूमने लगी। बस, फिर खाना-पीना, हँसना-बोलना सब ही बन्द हो गया। इकला पडा रहता, मूंज का पट्टा बिछाये अपने ढूले 'कबर' पर। कलाई मे जो घडी बँधी थी धीमी पड गई। पाँच मिनट मे एक मिनट बजाने लगी और नाडी भी मन्दगति, सोती-जागती सी चलने लगी। शायद अगले सप्ताह के 'यग इण्डिया' मे प्रतिवाद आ जाए। बडी मुश्किल से सात दिन कटे। फिर जमादारो से तिकडम भिडाकर अगले सप्ताह का 'यग इण्डिया' मँगाया, उसमे मजिस्ट्रेट की माफी छपी और मेरा वह बयान छपा जो मैंने थप्पड लगने के बाद अदालत मे दिया था। पर गाधीजी ने मेरी सराहना नही की।

मेरा मुकदमा बुलन्दशहर से मेरठ भेज दिया गया। रास्ते मे मैंने महात्मा गाधी को एक पत्र लिखा जिसमे अन्य बातो के साथ-साथ मैने लिखा, "मैं तो कायर हूँ ही पर ज़रा अपनी ओर भी देख लीजिए। एक पत्रकार के नाते यह कौन-सी बहादुरी है कि यह जानते हुए भी कि मै काल-कोठरी मे बन्द पडा हूँ और किसी बात का प्रतिवाद नही कर सकता, आप खुले आम अपने समाचारपत्र म मुझे कायर की उपाधि दे रहे है।" इस बीच म काशी के श्रद्धेय बाबू भगवानदास और पजाब-केसरी लाला लाजपतराय ने भी महात्मा गाधी को प्रोटेस्ट के पत्र भेजे। गाधीजी ने वे भी छाप दिए। मेरा पत्र भी छाप दिया।

१० नवम्बर, १९२१ के 'यग इण्डिया' मे गाधीजी ने लिखा.

"श्री त्यागी ने खुली अदालत मे अपने व्यवहार से

मजिस्ट्रेट को काफी तौर से प्रदर्शित कर दिया था कि वह बहादुरी के साथ अपमान को केवल देश-हित म सहन कर रहे हैं, भयभीत होकर नही। मेरी पिछली टिप्पणी दूर की सुनी हुई बातो के आधार पर थी। मुझे दुख है कि इस देशभक्त बहादुर और साहसी युवक के साथ मैंने अनजाने से अन्याय कर दिया, जिसके लिए मैं हजार बार क्षमा चाहता हूँ। मैं दूर बैठे उन पत्रकारो की कठिनाइयो को अनुभव करता हूँ जो सच्ची घटनाओ द्वारा जनता की राय को सही रास्ते पर डालना चाहते हैं।"

जेल मे इस माफी को पढ़कर मैं और अधिक परेशान हो गया। 'यग इण्डिया' को छाती से लगाये चारो ओर रोता फिरता था कि इस देवता को मैंने गुस्ताखी भरे शब्द क्यो लिख दिये।

इसके बाद मेरा मुकदमा मेरठ के ज़िला मजिस्ट्रेट की अदालत मे हुआ, और २ वर्ष की सादी सजा करके मुझे आगरे की जेल मे भेज दिया गया। निम्नलिखित शेर कहा था वहाँ के एक कवि-सम्मेलन मे

'वहशते दिल'[१] का यहाँ आकर भी सामाँ न हुआ।
आगरा जेल मे छोटा-सा बियाबाँ न हुआ।"

लाहौर के बहुत बडे खिलाफत के नेता मौ० जफर अली खाँ ने मेरे अदालत मे पीटे जाने की खबर पढकर निम्नलिखित कविता अखबारो मे छपवाई थी

१ दिल की बेचैनी

इक सिरफिरे अंग्रेज ने जब बरसरे इजलास[1],
लगवाये पियादो से महावीर को चांटे ॥
इतना भी न वटलर की हुकूमत से बन आया,
उस अपने नुमाइन्दये-इंसाफ को डॉटे ॥
जिस रोज बखेरे गए इन्साफ के यह फूल,
बरतानिया के रस्ते मे बोये गए कांटे ॥
इस जुल्म पै इस जौर पर जो पैकरे बेदाद,[2]
अद्ल[3] और मसावत[4] का भी फल्मफा छांटे ॥
अच्छा है इससे तो कही लदन का वह अन्धा,
फिर-फिर के मटन-चाप जो अपनो ही को बाँटे ॥

—'जफर'

---

१. भरे जलसे मे २. अत्याचार की मूर्ति ३. न्याय ४. बराबरी

तेरह
कहानी की महिमा

"स्टेशन मास्टर साब, पापा आज नहीं जायेंगे, तुम अपनी रेल को जल्दी-जल्दी छोड़ देना···" टेलीफोन पर कोई ऊटपटांग नम्बर मिलाकर अनिल (मेरा साढ़े चार वर्ष का नाती) ने उपरोक्त वाक्य कहकर टेलीफोन रख दिया और मुझसे आकर बोला, "पापा, मैंने रेलवालों को बोल दिया है कि पापा को देर हो जाएगी, तुम रेल को रोके रहना, अभी तुम धीरे-धीरे खाना खाओ और फिर कुछ देर आराम करके स्टेशन जाना।" नानू ने पहली बार इतने बड़े जाल बट्टे का खेल खेला। मुझे रात को गाडी से देहरादून जाना था, सीट बुक हो चुकी थी, और बिस्तरा बँध रहा था। उसे मेरा बाहर जाना पसन्द नहीं है क्योंकि रोज रात को मेरे पास सोता है और कहानी सुनता है। दिन में कई बार अपनी अम्मी की शिकायत लगाकर जिद करता है कि अम्मी को डाँटो। मैं झूठ मूठ 'खबरदार मेरे नानू को तंग करा तो' कह देता हूँ, फिर उसके मुंह को देखता हूँ। तब वह कहता है, "पापा, इतने जोर से डाँटो कि अम्मी को रुला दो।" वह झूठ-मूठ रो देती है। हमारा सबका ख्याल था कि घर भर में नानू मुझको

सबसे ज्यादा प्यार करता है। आज मैंने परीक्षा लेनी चाही, पूछा कि "नानू, तुम मेरे साथ देहरादून जाओगे या अम्मी के साथ दिल्ली रहोगे?" दोनों की ओर बारी-बारी से देखा और अम्मी की गोद की ओर बढ़ते हुए बोला, "मैं अम्मी के पास।" वैसे तो मैं जानता था कि खून पसीने से गाढा होता है फिर भी जरा मलाल हुआ कि कैसा छलिया है यह, कागज तो मेरे फाड़ता है, दिन-रात बंदर के बच्चे की तरह मेरे पीछे-पीछे लगा रहता है, पर सचमुच वह प्यार करता है अपनी अम्मी को।

फिर उसकी टेलीफोनवाली बात याद करके तो मुझे सचमुच अपने से ग्लानि होने लगी। क्योंकि वास्तव मे दोषी मैं ही हूँ। उसने आज तक जो कुछ भी सीखा है, मुझसे सीखा है। मैं ही हूँ कि जो अपने दुधमुंहे निर्दोष नाती के मानसिक विकास मे ज़हर भरे इंजेक्शन लगा रहा हूँ। कहने को तो हम सब बड़ी उमरवाले बच्चो को खिलाते है पर जैसा कि मेरे एक मित्र ने बताया, वास्तव मे हम बच्चों को खिलाने के बजाय खुद उनसे खेलते हैं। वह हमारे खिलौने हैं, उनसे जी बहलाते हैं और उनके बहाने हम चाहे जितना नाचें, गायें, खेल करें, कुत्ते की बोली बोलें या बिल्ली की, दुनिया हमारी हँसी नही रोक सकती।

"वह देखो बिल्ली आई; कौवे, नानू का कान पकड़ के इसे पेड़ पर ले जा।" "मत आना कौवे, पापा तुझे पकड़ के अपनी जेब मे छिपा लेंगे, फिर रोते फिरोगे, हां।" कभी मुट्ठी में पैसे छिपाकर उसे छूमंतर से उड़ा देता है, "चिड़िया ले गई।"

हमारी तरह वह भी छूमंतर, काली कलकत्ते वाली कहकर चीज़ों को छिपाने लगा। मैं मज़े ले रहा हूँ। रात को रोज़ कहानी सुनानी पडती है। यहाँ तक नित नई कहानियाँ सुनाऊँ। झूठ-मूठ की मनगढत सुनानी पडती हैं। वह भी चोर-उचक्के, भूत-परेत, जेबकतरे, ठग, शराबी, पागल और तीतर-बटेर की। जो भी हमें स्वय प्रिय लगती हैं उसी विषय की सुनाते हैं और उसी स्तर की खिलवाड करते हैं। ठीक उन्ही दिनो मे कि जब उसके भावी चरित्र और प्रारब्ध की नीव पड रही है—यानी दो वर्ष की आयु से सात वर्ष की आयु तक। हम अपनी सतान के मन मे स्वार्थ, भय, लालच, चोरी-चकारी, जालसाज़ी, कत्ल, खून और बदमाशी के सस्कार ऐसे कूट-कूटकर भर देते हैं कि जैसे किसी विशाल भवन की नीव कूटी जाती है। इन बुनियादी विषैले सस्कारो की जड बडी हो जाने पर ऊँची से ऊँची धर्मशिक्षा भी नही काट सकती। इसी तरह अपने हाथो से अपनी सतान को चरित्रहीन बनाकर हम उमर भर रोते हैं। मेरा विश्वास है कि हर व्यक्ति के चरित्र मे अपने बचपन की झलक अवश्य मिलती है। इसी वास्ते बडो ने कहा है कि 'पूत के पाँव पालने मे ही दीख जाते हैं।'

एक डाक्टर को, कि जो बीस वर्ष से विलायत मे काम करते हैं और जो कुछ दिनो के लिए दिल्ली आए थे, मैंने उनकी मुस्कराहट से पहचान लिया कि वह श्री राजगोपालाचार्य के निकट सम्पर्क मे रहे होगे। उन्हें आश्चर्य हुआ क्योकि जैसा उन्होने बताया, वह बचपन से राजाजी के साथ खेले

और पढ़े थे ।

हमारी सरकार भारत के उत्थान के लिए तरह-तरह की आयोजना बना रही है और आर्थिक संकटों का सामना भी कर रही है, पर हमारी आर्थिक नीति, विज्ञान, उद्योग और व्यवसाय की वृद्धि से क्या लाभ होगा यदि हमारा नैतिक स्तर ऊँचा न हो सका । आज हम देखती आँखों अपनी संतान का ह्रास देख रहे हैं । यह ह्रास केवल स्कूल-कालेज के बच्चों को अनुशासन की शिक्षा देने से नहीं रुकेगा, इसके लिए हमें अपनी माँ के पास सोते हुए उन बच्चो को पकड़ना होगा कि जो कहानी सुनने के लिए उतावले हो रहे हैं । वास्तव में यह कहानियाँ नैतिक उत्थान की रामबाण गोलियाँ हैं । आज किसी माँ को भी आदर्श कहानियाँ याद नहीं है, न ही किसी-को यह अधिकार है (चाहे वह माँ ही क्यों न हो) कि भारत की भावी संतति के सस्कारों को आजन्म रोगी बना दे ।

सरकार को चाहिए कि वह मनोविज्ञान के पंडितों का एक ऐसा बोर्ड बिठाए कि जो एक ऐसी प्रतियोगिता की घोषणा कर दे कि जिससे भारत के तमाम भाषाओं के लेखक अच्छी से अच्छी कहानियाँ लिखें और उनमें से जो कहानियाँ 'अबोध शिक्षा कोष' के लिए स्वीकार हो जायें, उनको प्रति कहानी के लिए कम से कम १०० रुपये पुरस्कार दिया जाए । फिर इस प्रकार इकट्ठी की हुई सारी कहानियाँ समाज के विकास के अनुसार दो वर्ष से सात वर्ष के बच्चों के लिए छः पुस्तकों के रूप में हर भाषा में छपवा दी जायें और

उनकी कम से कम एक करोड़ प्रतियाँ घर-घर में मुफ्त बाँट दी जायँ।

मेरी यह भी सलाह है कि रोज़ रात्रि को साढ़े आठ बजे कम से कम एक कहानी रेडियो पर बच्चों को उनकी भाषा में सुना दी जाए। यदि भारत को उठाना है तो उसकी नींव मज़बूत करनी पड़ेगी।

चौदह

'गांधी' का स्वप्न

(१३-४-१९६३)

भारतीय पचाग के अनुसार आज बैसाखी का दिन है कि जब हमारा नया साल शुरू होता है। हमारे स्वतत्रता-युद्ध के इतिहास मे भी यह त्यौहार, नये दिन के रूप में मनाया जाता है। क्योकि आज से ४५ वर्ष पहले इसी तारीख को हमने विदेशी सेना से पहिला मोर्चा लिया था। बात पुरानी हो जाने के कारण लोग भूल न जावें, इसलिए मैं कुछ व्याख्या के साथ बताना चाहता हूँ कि इस मोर्चे का इतिहास क्या है?

मार्च सन् १९१९ मे विदेशी सरकार ने 'रालेट बिल' के नाम से एक ऐक्ट पास किया, जिसके अनुसार राजनैतिक और क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओ को बिना वारण्ट गिरफ्तार किया जा सकता था। उसकी धाराओ का सार यह था कि मुकदमे बन्द कमरे मे होगे, और जिसपर भी क्रान्तिकारी होने का शुबहा होगा, वह गिरफ्तार कर लिया जावेगा और जिसके पास कोई पर्चा या किताब एतराज के काबिल मिलेगी वे भी बिना वारण्ट गिरफ्तार हो सकेंगे और उन्हे दो वर्ष की सजा होगी।

केन्द्रीय एसेम्बली में दिन भर इस बिल पर बहस हुई और जितने भी चुने हुए सदस्य थे (मालवीयजी, जिन्ना साहिब, विट्ठलभाई पटेल आदि) सबने इस बिल का विरोध किया, फिर भी रात के ११३ बजे यह बिल पास हो गया। सारे देश में हाहाकार मच गया क्योंकि अंग्रेजी राज्य में इस प्रकार की धांधलेबाजी अभी तक सुनने में नहीं आई थी। महात्माजी ने कहा कि—"सोते हुए को जगाया जा सकता है, पर जो जान-बूझकर सोने का बहाना करता हो, उसको जगाना मुश्किल है, चाहे जितना भी क्यों न चिल्लाओ।"

उन दिनों गांधीजी बीमार थे, फिर भी उन्होंने देश का भ्रमण आरम्भ कर दिया। जब मद्रास पहुँचे तो राजगोपालाचारी के मेहमान थे। परेशान तो थे ही, पौ फटने से पहिले ही आंख खुल गई, फौरन राजाजी को जगाकर बोले कि आज मुझे अधजगी दशा में एक स्वप्न दिखाई दिया कि जिसने मुझे पागल बना दिया। स्वप्न था कि सारे भारतवासियों का आह्वान किया जाय कि वह एक दिन निश्चय करें कि जब सब स्त्री-पुरुष २४ घंटे का उपवास रखें और भगवान की याद करते हुए अपने अपराधों का प्रायश्चित्त करें और उस दिन सब कार-बार, दुकान, कारखाने बन्द रहें। राजाजी ने इस विचार को पसन्द किया और ३० मार्च को यह दिन मनाने का निश्चय हो गया, फिर ३० मार्च की जगह ७ अप्रैल तय हो गई और इस दिवस का नाम सत्याग्रह-दिवस रखा गया। निश्चय हुआ कि इस दिन जब्त-शुदा (गैर-कानूनी) साहित्य खुले आम बेचा जावे। दो किताबें 'हिन्द स्वराज्य' और 'सर्वोदय' जो

जब्त हो चुकी थी, उनके साथ और भी पर्चे बेचे जावें। ७ अप्रैल को सत्याग्रह नाम का जब्त पर्चा बाँटा गया और जवाहरलालजी ने भी अपने हाथ से बांटा।

दिल्लीवालो ने अपनी हडताल ३० मार्च को ही की, उसमे बलवा हो गया। इसी तरह पजाब मे कई जगह बलवे हो गए। गाधीजी को पजाब आने की चिन्ता हुई। पर पलवल मे उन्हे गिरफ्तार करके मथुरा ले गए और वहाँ से बम्बई जाने-वाली एक मालगाडी मे बिठाकर सवाई-माधोपुर और वहाँ से सवारी गाडी मे बम्बई ले गए। बम्बई, अहमदाबाद और नदियाद में भी बलवे हो चुके थे। गाधीजी ने तीन दिन का उपवास प्रायश्चित के रूप मे किया, क्योकि वह हिंसा नही चाहते थे। इसी अवसर पर उन्होने कहा था, "बिना तैयारी कराये सत्याग्रह आरम्भ करना हिमालय जैसी भयकर भूल थी।"

१० अप्रैल को अमृतसर मे एक भीड को शान्त करते हुए स्व० डाक्टर किचलू, डा० सत्यपाल और रामभज दत्त चौधरी गिरफ्तार कर लिये गये। बस, शहर भर मे आग भडक गई। हजारो की तादाद मे हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख, ईसाई जमा होकर एक जलूस की शक्ल मे डिप्टी कमिश्नर की कोठी की ओर जा रहे थे, कि रेल के फाटक के पास पुलिस ने गोली चला दी और १० व्यक्ति शहीद हो गए और सैकडो जख्मी हुए। यह जलूस उन दस शहीदो की लाशो को शहर वापिस ला रहा था कि रास्ते मे कोई अग्रेज मिल गया। लोगो ने उसे मार डाला। इस तरह लोगो के सिर पर खून सवार हो गया। ४ अग्रेज और मारे गए। डाकखाने और रेल-गोदाम लूटे गए

श्रौर टाउनहाल मे आग लगा दी गई। फौरन ही ब्रिगेडियर जनरल डायर की कमाड मे सारे शहर मे फौज का पहरा लगा दिया गया। दो दिन तो शान्ति रही अमृतसर मे, पर १३ अप्रैल को जहाँ वैसाखी का मेला होता है, जलियानवाले बाग मे जलसा हुआ। यह बाग चारो ओर मकानो की दीवारो से घिरा हुआ था, केवल छोटी-सी गली के रास्ते अन्दर पहुँच सकते थे। जल्सा हो ही रहा था कि जनरल डायर अपनी फौज को बाग मे ले आया और जल्से को भग करने के लिए उसने बिना किसी चेतावनी के भीड पर गोली चलाने का आर्डर दे दिया। दस मिनट तक लगातार गोली चलती रही। औरत, मर्द और बच्चे, जो मेले मे आए थे, चूहो की तरह इधर-उधर भागने लगे पर डायर को तरस न आया। सँकरी-सी गली थी, बाहर निकलने को रास्ता तक न मिल पाया। माँ अपने बच्चे को गोदी मे छिपाये कहाँ ले जाय! कितना जुल्म था कि गोली माँ और उसके दूधपीते बच्चे को एक ही लपेट मे गिरा रही थी। एक हजार छ सौ व्यक्ति गोली का शिकार हुए पडे थे। हाहाकार मच गया, पर कोई जख्मियो की मरहम-पट्टी करने वाला तक न मिला। ४०० से अधिक की मृत्यु हो गई और १२०० से अधिक हाहाकार करते रहे। शहर भर मे मार्शल ला हो गया।

एक गली मे लोगो ने किसी मेम का अपमान कर दिया था। सरकारी हुक्म हो गया कि इस सडक पर जो भी हिन्दुस्तानी निकलेगा वह सीने के बल बैल बकरियो की तरह चारो हाथ-पैरो के बल रेंगकर चल सकेगा।

अगर कोई अग्रेज विदेशी भी सडक पर मिलेगा तो हिन्दुस्तानी को अपनी मोटर गाडी या बाइसिकल से उतरकर उस अग्रेज़ को सलाम करनी पडेगी।

कर्नल जानसन ने हुक्म लगा दिया कि १०० कालेज के विद्यार्थियो को रोज़ाना १६ मील का मार्च धूप मे करना होगा जहाँ उनकी हाज़िरी ली जावेगी और उन्हें सरकारी झण्डे को सलामी देनी होगी। यदि किसीकी दीवार पर कोई सरकारी नोटिस चिपका हो और वह फट गया हो तो घरवाले पकडे जावेंगे। एक कालेज के सारे प्रोफेसर इसी जुर्म मे पकडे गए। एक बारात बाजा बजाते हुए जा रही थी, उसके हर व्यक्ति को हण्टरो से पीटा गया। बादशाही मस्जिद मे ४२ दिन तक नमाज़ पढने की मनाही रही।

हमने वर्षों तक जलियानवाले बाग की कहानियो को सुना-सुनाकर स्वतन्त्रता-आन्दोलन को शक्तिशाली बनाया।

पर जितना अग्रेजी कर्मचारियो ने हमारे ऊपर दमन किया, उतना ही ब्रिटिश सम्राट और उसकी पालियामेट की सहानुभूति हमारे साथ होती गई। जलियानवाले बाग के चन्द ही महीने पीछे २४ दिसम्बर, सन् १६१६ को ब्रिटिश सम्राट् ने सारे राजनैतिक कैदी छोड दिये और एलान कर दिया, भारत उद्धार ऐक्ट का। महात्मा गाधी पर इसका बहुत अच्छा असर पडा और उन्होने अमृतसर काग्रेस मे, जो उसी वर्ष हुई, एक प्रस्ताव रखा कि असहयोग-आन्दोलन वापिस बुला लिया जाय। देश-बन्धुदास, विपिनचन्द्र पाल, महाराज तिलक आदि सब ही लीडर विरोध मे थे। गाधीजी ने काग्रेस छोडकर वापिस जाने की इच्छा

प्रकट की तो मालवीयजी ने उन्हें रोका और श्री जयरामदास दौलतरामजी ने उस प्रस्ताव मे ऐसा सशोधन कर दिया जो सबको स्वीकार हो गया। यह महात्मा गाधी का ही प्रताप था कि आखिर सन् १९४७ मे ब्रिटिश सरकार ने खुशी-खुशी हमें स्वतत्र कर दिया और शासन की बागडोर हमारे सुपुर्द करके वापिस चले गए। जहाँ हमे अपनी स्वतत्रता पर नाज़ है वहाँ ब्रिटिश सरकार को भी अपनी उदारता पर गौरव है। आज भी वह हमारे मित्र हैं और इस सकटकाल में हमारी दिल से मदद कर रहे हैं। हम सचमुच उनके कृतज्ञ हैं। पर उनकी हमदर्दी पाकिस्तान की ओर अधिक है।

जिस तरह ४५ वर्ष पूर्व हमारे शहीदो ने, हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, पारसी और ईसाइयो ने अपने खून से एकता की शपथ लिखी थी, आज ठीक उसी तरह हमारे जवानों ने लद्दाख और नेफा के मोर्चे पर खून बहाकर स्वतत्रता की बेल को सीचा है। चीनियाने हमे चुनौती दी है। हम पीछे हटनेवाले नही हैं। यदि चीनी शक्ति के रोब से हमे दबाना चाहते हैं तो वह धोखे में हैं। हमारा बच्चा-बच्चा शहीद हो जावेगा पर अपनी मातृभूमि के चप्पे-चप्पे की रक्षा करेगा। भारतीयो! नही कहा जा सकता कि क्या होने वाला है, हमे बहादुरी के साथ इस सकट का सामना करना है। इसलिए आज शहीदी दिवस पर शपथ उठाओ कि हमारी जान भारत-माता की सम्पत्ति है, हम उसपर न्योछावर होकर देश-भक्ति का नया इतिहास लिखेंगे। जयहिन्द!

पन्द्रह

क्रांतिकारी योजना

गोकि महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन ने भारत भर में अहिंसात्मक सत्याग्रह का वातावरण तैयार कर दिया था और देशभक्तों की प्रवृत्ति जनसाधारण के साथ सहानुभूति और सहायता करने की बना दी थी, फिर भी नवयुवकों में अंग्रेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध इतनी घृणा और उत्तेजना आ गई थी कि वे भारतमाता की ख़ातिर अपनी जान तक न्यौछावर करने को तुले फिर रहे थे। जगह-जगह षड्यंत्रियों की टोलियां हथियार इकट्ठे करने और बम बनाने की शिक्षा लेने में लगी हुई थी। ये लोग गांधीजी से भी कई बार मिल चुके थे, पर उनका सदैव यही आग्रह रहा कि 'सत्याग्रह के आन्दोलन के बीच में किसी प्रकार से भी शान्ति भंग करना स्वतन्त्रता-युद्ध में बाधक होगा।

हमारे प्रान्त यू० पी० में शचीन्द्रनाथ सान्याल, चंद्रशेखर आज़ाद, रामप्रसाद बिस्मिल, अश्फाकउल्लाखां, प्रेमकृष्ण खन्ना, जोगेशचन्द्र चटर्जी आदि कुछ गुप-चुप संगठन के कार्यों में लगे थे। मेरी शचीन्द्रनाथ सान्याल से बहुत घनिष्ठता थी। यहाँ बड़े दुःख के साथ मैं यह स्वीकार करना चाहता हूँ कि इस

सिलसिले मे मैंने गाधीजी के साथ भयकर विश्वासघात किया और आज इस लायक भी न रहा कि उनसे क्षमा मॉग सकूं। मरने पर भी भेंट न हो सकेगी क्योंकि वह स्वर्ग में होगे और मैं नरक मे। बाहर से मैं बापू का विश्वासपात्र बना रहा और अन्दर-अन्दर उनके आदर्शों के विरुद्ध क्रान्तिकारियो के साथ साज-बाज भी करता रहा और सिगरेट भी पीता रहा। एक दिन सचेन्द्र दादा ने मुझे इलाहाबाद बुलाकर शाहजहाँपुर रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाकउल्ला (दोनो फाँसी पा गए) के पास हथियारो के सिलसिले मे भेजा। हम सब लोग नज-दीक के एक कोल्हू मे जा छिपे और रात को वहाँ पर श्री प्रेमकिशन खन्ना ने, जो आजकल लोक-सभा के मेम्बर हैं, अपनी कमर से बँधा हुआ माउज़र पिस्तौल खोलकर दिखाया और उसके चलाने की शिक्षा दी। (मैं आशा करता हूँ कि आजकल की खुफिया पुलिस अब हमपर कोई कानूनी कार्य-वाही न करेगी)। रामप्रसाद बिस्मिल न मुझे आश्वासन दिया कि सचेन्द्र दादा को जितने हथियारो की ज़रूरत पड़ेगी वह उन्हें दे देंगे।

मेरी नौकरी

इसी तरह एक दिन फिर दादा ने मुझे बुलाकर मैले-कुचैले कपडे पहना दिये और इलाहाबाद के एक डी० आई० जी०, सी० आई० डी० के यहाँ बर्तन माँजने और झाड़ू देने पर नौकर रखा दिया। नौकरी १२ रु० और खूराक पर तय हो गई और मुझे हिदायत कर दी गई कि चश्मा न लगाऊँ और यह

न जाहिर करूँ कि मैं पढ़ना-लिखना जानता हूँ। तमाशे को 'तमासा' और चाकू को 'चक्कू' बोलूँ। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का मेम्बर था, और सारे लीडरों के साथ हँसना-बोलना भी था। नौकर हो गया। तीसरे ही दिन उनके यहाँ एक दावत हुई जिसमे और भी बड़े-बडे खुफिया पुलिसवाले बुलाये गए। वहाँ पर मैं खाना परोस रहा था कि इन सरकारी अफसरो मे आपस की बात अँग्रेजी मे होने लगी। मेरे साथ एक और लड़का इद्दू नाम का था। उनकी बात सुनकर मेरी आँख मे आँसू आ गए। वाह रे भारत की सन्तान, दोनों हिन्दू और मुसलमान ! एक कालिब दो जान ! मैं तुमपे कुरबान ! मेरे साहब ने कहा कि "अगर कानपुर में जाकर तलाशी ले ली और वहाँ कुछ सामान मिल गया तो न जाने कितने माई के लाल पकडने पडेगे। आखिर हम इसी देश के वासी हैं, क्या अपने हाथो से अपनी औलाद को फाँसी लगा दें ? उनकी माँ और बेवाये क्या कहेगी ?" दूसरे सब बोले कि बात तो ठीक है। कानपुरवाले साहब ने कहा, "मैं किसी आदमी से गुमनाम चिट्ठी लिखवाकर भिजवा दूँगा कि जल्द तुम्हारी तलाशी होने वाली है, सामान हटा लो।" मैंने रात को एक बजे जाकर सचेन्द्र दादा को सूचना दे दी। रातों-रात कानपुर खबर कर दी गई। तीसरे दिन गुमनाम चिट्ठी भी आ गई, तलाशी नही हुई।

अभी ९ या १० दिन नौकरी करते हुए थे कि एक दिन फिर दावत हुई। मुझे १ रु० देकर साहब ने हुक्म दिया कि बाजार से गोभी खरीद लाओ। मैं साइकिल पर गया और

फूलगोभी की जगह पत्तों की गोभी ले आया। शाम को साहब दफ़्तर से लौटे तो मुझे आवाज दी "महुव्वा, इधर आओ।" मैं हाजिर हुआ तो मेरे मुँह पर जोर का चाँटा लगाकर बोले, "सुअर का बच्चा, तुमने गोभी का फूल मँगाया था तू यह क्या ले आया?" थप्पड़ खाते ही मुझे झुँझलाहट आई और मैं गुस्से से अंग्रेज़ी में 'डैम स्वाइन' कहने को था कि मुझे याद आ गई कि मैं नौकर हूँ। "गल्ती हो गई साहब, अभी फूल-गोभी लाता हूँ।" जल्दी से फूलगोभी ला दी, पर सचेन्द्र दादा को सब हाल सुनाकर कहा कि मुझे डर है कि मैं ज्यादा दिन यह नौकरी न कर पाऊँगा। दादा ने कहा कि दावत के बाद बाईसिकल छोडकर अपने कपडे यहाँ आकर बदल लेना, और फौरन बिजनौर चले जाना। बस अपनी तनख्वाह भी नही ली और तीसरी क्लास का टिकट लेकर बिजनौर चला गया।

फिर दादा ने कहा, कुछ विश्वासपात्र मित्रों के नाम बताओ। मैंने बुलन्दशहर के रामचन्द्र शर्मा और मेरठ के श्री विष्णु शरण डुबलिश के नाम सुझाये। विष्णुशरण डुबलिश की भेंट कहाँ पर कराई जाये। यह ठहरा कि गाजियाबाद के वेटिंगरूम मे मिलाया जाये। डुबलिश गाज़ियाबाद आए और षड्यन्त्रियो मे शामिल हो गए। काकोरी ट्रेन मे जो डकैती हम लोगो ने की थी उसकी पहली गोष्ठी मेरठ के अनाथालय मे हुई थी कि जहाँ के डुबलिश सुपरिंटेण्डेण्ट थे। मेरठ की गोष्ठी के समय मेरे पास तार आया कि मैं फौरन मेरठ पहुँचूँ, पर बिजनौर मे मैं जिनके घर रहता था

(विश्वमित्र वकील) उन्हे कुछ सदेह हो गया था और उन्होने मुझे तार नही दिखाया। फिर जो तारीख डकैती की तय हुई थी उसकी खबर करने के लिए एक बगाली बाबू मुझसे मिलने आए तो विश्वमित्रजी ने उन्हे यह कहकर टाल दिया कि वह तो कई दिन से कही बाहर गए हुए है। था मैं घर मे, पर इन्हे तो मौका टालना था। फिर किसी किसान कान्फ्रेस का प्रबन्ध कर दिया। इसलिए मैं डकैती मे हिस्सा न ले सका। गोकि सी० आई० डी० की सूची के अनुसार मेरा भी वारण्ट कटा था, पर अग्रेज कलेक्टर के पास उसी दिन एक किसान-सभा मे मेरे भाषण की रिपोर्ट थी, इसी कारण मेरी गिरफ्तारी भी नही हो सकी।

जवाहरलाल नेहरू पर डडों की बौछार

सन् १९२९ मे अग्रेज़ी सरकार ने भारत की राज्य-प्रणाली मे सुधार करने के लक्ष्य से एक आयोग की नियुक्ति की, जिसके अध्यक्ष सर साइमन थे। यह ऐतिहासिक आयोग 'साइमन कमीशन' के नाम से मशहूर है। काग्रेस ने इस कमीशन के बाइकाट का निश्चय किया। जहाँ भी यह कमीशन जाता हज़ारो की तादाद मे लोग काले झण्डो से इसका स्वागत करते और 'साइमन गो बैक' (साइमन वापस जाओ) के नारे लगते। लखनऊ मे जब कमीशन आया तो बहुत बडा जलूस काले झण्डो के साथ निकला। इस जलूस के नेता प० जवाहरलाल नेहरू थे और उनके साथ ही स्व० पं० गोविन्द वल्लभ पन्त भी थे। पुलिस के घुडसवारो ने इस जलूस पर

लाठी-डण्डों का प्रहार किया और विशेष रूप से जवाहरलाल-जी की कमर बेंतों से उधड़ डाली। सारी कमर पर नीले दाग़ पड़ गए। पं० मोतीलाल उस दिन आनन्द भवन, इलाहाबाद में थे। उन्हें जैसे ही खबर मिली अपने हाथ से मोटर चलाकर लखनऊ पहुँचे। इकलौते बेटे जवाहरलाल की जख्मों से उघड़ी हुई कमर बाप से देखी न गई और वह रो पड़े और भी सब साथी रो पड़े। कमर की फ़ोटो ली गई और सब अखबारों में छपी। पर हम लोगों को इस बात का मलाल रहा कि हम साइमन को काले झण्डे दिखा न सके क्योंकि पुलिस ने पहिले से ही सब छीन लिए थे। शाम को ताल्लुकेदारों की ओर से एक चायपार्टी बारादरी के मैदान में हुई। लखनऊ पतंगबाज़ी के लिए नवाबों के वक्तों से मशहूर है। बस किसी लड़के ने एक पतंग ऐसी उड़ाई कि वह सीधी लार्ड साइमन की मेज़ पर एक प्लेट में ठोंग मारकर ऐसी वापिस हुई कि जैसे कोई चील झपट्टा मार गई हो। उस पतंग पर अंग्रेज़ी के मोटे अक्षरों में लिखा था 'साइमन गो बैक'। साइमन ने उसे पढ़ तो लिया पर पतंग को पकड़ न पाये। पुलिस ने बहुत कोशिश की पर पतंग का पीछा न कर सकी। एक बार जब मैं प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का सेक्रेटरी हुआ तो श्री सी० बी० गुप्त और स्व० हरिश्चन्द्र बाजपेयी और श्री त्रिलोकीसिंह की पार्टियों में लखनऊ सिटी कांग्रेस के दफ्तर पर कब्ज़ा करने की होड़ हो गई तो मैंने दफ्तर पर अपना ताला डलवा दिया। उस समय सबसे अधिक ज़ोर इस बात पर था कि वह पतंग' किसके पास रहेगी। मैंने उस पतंग

को गौर से देखा, वह एक कोने पर थोड़ी-सी फटी हुई थी ।

ला० लाजपतराय की हत्या

इसी तरह लाहौर मे जो काले झण्डों का जलूस निकला उसका नेतृत्व स्व० ला० लाजपतराय जी ने किया। वहाँ पर भी जोरो का लाठी प्रहार हुआ । सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस, मिस्टर स्काट ने ला० लाजपतराय की छाती पर इतने जोर से लाठी के ठुड्डे मारे कि उनके घाव हो गये और हफ्ते-दस दिन के बाद १७-११-२८ को लालाजी स्वर्ग सिधार गए। उनके दिल पर चोट आ गई थी। उनकी मृत्यु के बाद सारे देश का खून खौल उठा। अब नवयुवक आपे से बाहर हो गए। इधर स्व० सी० आर० दास की विधवा श्रीमती बासन्ती देवी ने अपील निकाल दी कि "क्या देश मे कोई भी इतना स्वाभिमानी माई का लाल नही रहा कि जो ला० लाजपतराय का बदला ले सके।" बस, फिर क्या था। शहीद भगतसिंह (२२ वर्ष), राजगुरु और चन्द्रशेखर आजाद ने स्काट को मारने का निश्चय किया। एक दिन शाम के वक्त मोटर साइकल पर एक साहब बहादुर चढ रहे थे, उन्होने उसे स्काट समझकर उसपर गोली चला दी। पहिली गोली राजगुरु ने चलाई पर वह पुलिस आफिसर स्काट नही था। वह तो डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट साडर्स था। गोलियाँ खाते ही वह तो मर गया और यह तीनो नवयुवक तेजी से भाग निकले। एक फर्न नाम के गोरे और सिपाही चन्दनसिंह ने इन तीनो का पीछा किया और गोली चलानी शुरू कर दी। इन्होने भी गोली का जवाब

गोली से दिया। इनका निशाना तेज़ था। सिपाही चन्दनसिंह गोली खाकर गिर पड़ा और साहब बहादुर भाग गए। सरदार भगतसिंह ने अपने केश कटा दिये, इसलिए इनको पहचानना कठिन हो गया। बाद में पता चला कि पं० मोतीलाल नेहरू ने चन्द्रशेखर आज़ाद से कह दिया था कि "अब कुछ न कुछ करना चाहिए।" पं० जवाहरलाल नेहरू जब लाहौर गये थे तो वह दयालसिंह कालेज के सामनेवाली कोठी में ठहरे थे, वहाँ नवयुवक क्रांतिकारी उनसे मिले और अपने मन की व्यथा कहकर उनसे आज्ञा चाही कि वह मार-धाड़ शुरू करना चाहते हैं, तो पं० जवाहरलालजी ने उत्तर दिया था, "मारें न मारें यह बात दूसरों से पूछने की नहीं होती।"

इसी प्रकार २२ दिसम्बर, १९३० को जब गवर्नर माण्टमोरेंसी लाहौर यूनिवर्सिटी की कनवोकेशन में भाषण देने पहुँचे तो वहाँ के विद्यार्थी श्री हारेकृष्ण जिनकी आयु केवल १७ वर्ष की थी, दुर्गादास खन्ना (२१) और रनवीर (मिलाप वाले, २१) और चमनलाल (जो हारेकृष्ण के चचाज़ाद भाई थे) ने गवर्नर को मारने का षड्यन्त्र किया। पहली गोली से गवर्नर ज़ख्मी हो गये। दूसरी चलाई तो बीच में श्री चानन सिंह असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट पुलिस आ गए और गोली खाकर मर गए। इन लोगों पर मुकदमा चला और श्री हारेकृष्ण को फाँसी हो गई। चन्द्रशेखर आज़ाद भी इलाहाबाद के एक पार्क में पुलिस की गोलियों का मुकाबला करते हुए मारे गए।

केन्द्रीय एसेम्बली मे बम

८ अप्रैल, सन् १९२९ को हिन्दुस्तान सोशलिस्ट ऐण्ड रिपब्लिकन पार्टी (भारतीय समाजवादी और गणतत्र पार्टी) के निश्चय अनुसार श्री भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने केन्द्रीय एसेम्बली मे बम फेंकने का फैसला किया। यह दोनो २०, २२ वर्ष के थे। दोनो ने एक-एक हाथ का बनाया हुआ बम अपनी जेब मे रखा और एक पिस्तौल छिपाकर मौजूदा 'लोक-सभा' की दर्शक गैलरी मे आ गए। शायद स्व० प० मदन मोहन मालवीय ने इन्हे पास दिलाया था। उन दिनो केन्द्रीय एसेम्बली मे बहुत ही गम्भीर विषयो पर बहसे हो रही थी। एक तो ट्रेड डिसप्यूट-बिल था, जो शिमले के अधिवेशन मे रखा गया था, जिसमे सरकारी पक्ष और हमारे पक्ष के बराबर-बराबर वोट आये थे, और जिसे अध्यक्ष महोदय (श्री पटेल) ने अपने वोट से रद्द कर दिया था। एक दूसरा बिल 'सेफ्टी बिल' था, जिसके अनुसार साम्यवादियो को देशनिकाला देने की बात थी। एक मेरठ कास्पिरेसी बिल था। सारे भारत मे इन बिलो के विरोध मे जल्से हो रहे थे। उस दिन की बैठक देखने के लिए लार्ड साइमन भी विशेष दर्शको मे बैठे थे। मेरठ कास्पिरेसी केस बिल पर रूलिंग हो गई कि या तो मुकदमा वापिस कर लो या बिल वापिस कर लो। श्री मोतीलाल नेहरू, श्री जिन्ना और श्री दीवान चमनलाल आदि के भाषण भी इस बिल पर हो चुके थे। दर्शकों से सारी गैलरी भरी हुई थी। यह दोनो देशभक्त पीछे से खिसक्ते-

गिराते आगे की ओर बढ आये। बिल पर वोट लिए जाने पर डिवीजन हुआ। हम हार गए और सरकार की जीत हो गई। सरकारी मेम्बरो ने बहुत खुशी मनाई, हथेली पीटी, मेज बजायी और टोपियाँ उछालनी शुरू कर दीं। स्पीकर पब्लिक सेफ्टी बिल पर अपनी रूलिंग देने खडे हुए कि एकदम दो बम ऊपर से गिरे और सारे हाल मे धुंआ ही धुंआ हो गया। भगदड पड गई। श्री पटेल भी चले गए। सर जार्ज शुस्टर (जो वित्त मत्री थे) और सर जेम्स क्रेगर मेज के नीचे छिपकर ऊपर को टिकटिकी लगाए देखते रहे। सारे मेम्बर और दर्शक भाग गए, श्री कबीरुद्दीन अहमद अल्मारी के पीछे और हरीसिंह गौड बाथरूम मे जा घुसे। उस बाथरूम का दरवाजा भी बन्द हो गया। फिर शायद तोडना पडा हो। श्री वामन जी दलाल को एक लोहे का टुकडा ऐसा लगा कि ४ इच का गहरा घाव हो गया। कुछ के खुरँच भी आईं। लार्ड साइमन भी भाग निकले। केवल दो व्यक्ति श्री भगतसिंह और श्री बी० के० दत्त दर्शको की गैलरी में रह गये। थोडी देर बाद इन्होंने अपने इश्तिहार नीचे फेंकने शुरू कर दिये और एसेम्बली के दरवाज़ बन्द होने लगे।

पण्डित मोतीलाल नेहरू एक हाथ म सिगरेट लेकर दूसरे हाथ के नाखून पर उसे ठोक रहे थे, वह सिगरेट जलाने से पहिले उसको ठोका करते थे। फिर एक गोरा सारजेंट टैरी ऊपर गया पर भगतसिंह के हाथ मे पिस्तौल देखकर ठिठक गया। भगतसिंह ने पिस्तौल ज़मीन पर फेंक दी और दोनो ने अपने खाली हाथ ऊपर को उठा लिए और 'लाग लिव रिवो-

ल्यूशन' (इनक्लाब जिन्दाबाद) के नारे लगाने लगे। दोनो गिरफ्तार कर लिए गए और सारजेंट के साथ चेम्बर के किसी कमरे में बैठा दिए गए। दो घंटे इसी कमरे मे रहे। ३ वजे साइमन साहब को बन्द गाडी मे ले जाया गया। फिर श्री बी० के० दत्त को नई दिल्ली की हवालात मे और भगतसिंह को पुरानी दिल्ली की हवालात मे ले गए। वहाँ पर उनकी चाय-पानी की बात पूछी गई और बडे आतिथ्य से व्यवहार किया गया। श्री दत्त के पास एक फोटोग्राफर फोटो लेने आया। बताया गया कि वह प्रेस का फोटोग्राफर है, पर था वह पुलिस का, ताकि गवाहो को तस्वीर दिखा दी जाये तो उन्हे शनाख्त करने मे कठिनाई न हो। फिर श्री तसद्दुक हुसैन जो गुप्त पुलिस के अफसर थे आये, इस समय रात के ११ बज चुके थे। उन्होने बडी देशभक्ति की बातें की और सिनेमा आदि का हाल पूछने लगे। उन दिनो एक फिल्म ऐसी आई हुई थी कि जिसमे बम फेंकने का दृश्य था। वह पूछने लगे कि आपने वह फिल्म देखी है? चलते-चलते उस चपल जासूस ने एक और चाल चली। कहने लगे, आपके कपडे बहुत मैले हो गए हैं, मैं नया जोडा कल को भेज दूंगा। आप अपने मैले कपडो को मय एक लिखित सूची के मेरे पास भिजवा देना ताकि मैं उन्हे धोबी के यहाँ भेज दूं। श्री दत्त समझ गए कि यह चाल हस्तालेख और हस्ताक्षर प्राप्त करने की और उनके कपडो पर जो पुराने धोबी के निशान पडे थे उनसे धोबी को ढूंढने की है कि जहाँ वह अपने कपडे धुलाया करते थे। इन्होंने अगले दिन अपने कपडे तो भेज दिये पर वह हिस्सा फाडकर रख लिया, जिस-

का अभियोग था। जेल में इन लोगों ने माँग की कि हमारे साथ वैसा ही व्यवहार होना चाहिए कि जैसा लड़ाई में पकड़े गए सिपाहियों के साथ होता है। इस माँग के अस्वीकृत होने पर इन्होंने १५ जून से भूख हड़ताल कर दी। जब-जब इनकी अवस्था बहुत नाजुक हो जाती तो इनकी नाक में नलकी डाल-कर दूध और दवाई पेट में पहुँचा देते, जिसके कारण न तो ये लोग मर सके और न जिन्दा रहे। आखिर ६३ दिन की भूख-हड़ताल के बाद १३-८-२९ को श्री यतीन्द्रनाथदास की मृत्यु हो गई। सारे देश में कोलाहल मच गया। इनकी लाश रेल से कलकत्ते पहुँचाई गई। रास्ते भर स्टेशनों पर भीड़ फूल चढ़ाती गई। आखिर ११२ दिन बाद ५ अक्टूबर को इनकी माँगें पूरी हुईं और भूख हड़ताल टूटी। परन्तु भूख हड़ताल के दिनों में अभियुक्त कचहरी में हाजिर न हो सके तो एक आर्डिनेन्स जारी किया गया कि लाहौर षड्यन्त्र केस की कार्यवाही अभियुक्तों की अनुपस्थिति में भी चल सकेगी। और हाईकोर्ट के तीन जज मुकदमे की सुनवाई कर सकते हैं। फिर इस आर्डिनेन्स के आधार पर केन्द्रीय असेम्बली में बिल आया। बहस हुई। प० मोतीलाल, मिस्टर जिन्ना आदि ने बहुत जोर से इस बिल का विरोध किया। हाईकोर्ट ने भी इसे रद्द कर दिया। वह बिल वापिस हो गया। भूख हड़ताल समाप्त होने पर मुकदमे की कार्यवाही फिर आरम्भ हो गई। अन्त में सर्व-श्री विजयकुमार, शिव वर्मा, डा० गयाप्रसाद, महावीरसिंह और जयदेव को आजन्म काले पानी की सजा हुई, और सर्व-श्री भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी की सजा हुई।

फांसी

२३ मार्च, सन् १६३१ को तीसरे पहर जेल के दरवाजे बन्द कर दिये गए। ५ बजे पिछले दरवाजे से मजिस्ट्रेट आदि जेल मे घुसे और इन तीनो देशभक्तो को फाँसी के लिए तैयार होने को कहा।

"हाँ। आज हमारी परीक्षा का दिन है। आज सरकार को पता चलेगा कि क्रान्तिकारी 'कितने इरादे के हैं'।"

तीनो एक दूसरे के गले मिले और फाँसीघर की ओर रवाना हुए। उनके मन मे क्या-क्या भावनाएँ रही होगी इसका अनुमान कठिन है। फाँसीघर पहुँचते ही तीनो को फांसी के तख्ते पर एकसाथ खडा किया गया। इनके सामने वह रस्सियाँ टँगी थी जिनका फन्दा इनके गले मे पडनेवाला था। तीनो ने तीन वार 'इन्कलाव जिन्दाबाद' के नारे लगाए। अपने-अपने फाँसी के फन्दो को वडे चाव से चूमा और आँख मीचकर चुप खडे हुए। जल्लाद ने फन्दे गले मे डाले और नीचे का तख्ता खीच लिया। तीनो झटके से नीचे लटक गए और पल भर मे उनके लटके हुए शरीर के तडपने से रस्सियाँ नाचने लगी। उनके माता-पिता को धन्य है कि कैसे उत्साह से भारतमाता पर न्यौछावर हो गए! सब भारतवासियो को अपनी छाती टटोलनी चाहिए, क्या हमारे मनो में भी अपने देश का कुछ प्यार है या हम अपने कर्तव्य को भूल बैठे हैं। आज फिर चीन आक्रमण कर रहा है। भगवान हमें शक्ति दे।

पर धोबी के निशान थे। श्री बी० के० दत्त को यह मालूम था कि काकोरी ट्रेन डकैती षड्यन्त्र के सिलसिले मे इन्ही धोबी के मार्को के द्वारा पुलिस ने सबूत इकट्ठा किया था। फिर भी दत्त जी ने अपने हाथ से कपड़ो की सूची बनाकर भेज दी। फिर एक भाड़ू लगाने वाला दत्त जी से बड़ा प्रेम प्रकट करने लगा। "आपकी आत्मा को धन्य है, अभी आपकी उम्र ही क्या थी कि देश पर बलिदान हो रहे हो। मेरे योग्य कोई सेवा हो तो अवश्य बतावें। यदि जेल से बाहर किसीका कोई सदेश भेजना हो तो मैं पहुँचा सकता हूँ।" पर वार्डर ने चुपके से बताया कि इस आदमी पर भरोसा मत करना, यह खुफिया पुलिस का आदमी है। एक दिन श्री दत्त को टाँका दिया कि भगतसिंह ने तो बयान दे दिया है, यदि चाहें तो आप भी दे सकते हैं। बाद मे मालूम हुआ कि इसी तरह भगतसिंह को भी टाँका दिया गया था, पर यह दोनो नवयुवक बहुत सचेत थे। इन्होने बयान देने से उस समय तक मना कर दिया कि जब तक दोनो एक साथ न रख दिये जायें। ७ दिन बाद सख्ती का बर्ताव करना शुरू कर दिया। इन्होने भूख हड़ताल कर दी तो फिर १४ दिन बाद दिल्ली जेल की गोरा बैरक मे भेज दिया गया और भगतसिंह को भी साथ ही रख दिया। फिर मुकदमा शुरू हुआ। इनकी तरफ से श्री आसफअली बैरिस्टर ने पैरवी की। गवाहो के बयान हुए, जिन्होने इनकी शनाख्त भी कर दी। फिर इन दोनो से पूछा गया कि तुम अपनी सफाई मे क्या कहते हो। इन्होंने तो बम केवल इसलिए फेंका था कि इनकी पार्टी का प्रचार हो जाये। बस अपना बयान ऐसी भाषा

का अभियोग था। जेल में इन लोगों ने माँग की कि हमारे साथ वैसा ही व्यवहार होना चाहिए कि जैसा लड़ाई में पकड़े गए सिपाहियों के साथ होता है। इस माँग के अस्वीकृत होने पर इन्होंने १५ जून से भूख हड़ताल कर दी। जब-जब इनकी अवस्था बहुत नाजुक हो जाती तो इनकी नाक में नलकी डालकर दूध और दवाई पेट में पहुँचा देते, जिसके कारण न तो ये लोग मर सके और न जिन्दा रहे। आखिर ६३ दिन की भूख-हड़ताल के बाद १३-८-२९ को श्री यतीन्द्रनाथदास की मृत्यु हो गई। सारे देश में कोलाहल मच गया। इनकी लाश रेल से कलकत्ते पहुँचाई गई। रास्ते भर स्टेशनों पर भीड़ फूल चढ़ाती गई। आखिर ११२ दिन बाद ५ अक्टूबर को इनकी माँगें पूरी हुईं और भूख हड़ताल टूटी। परन्तु भूख हड़ताल के दिनों में अभियुक्त कचहरी में हाज़िर न हो सके तो एक आर्डीनेन्स जारी किया गया कि लाहौर षड्यन्त्र केस की कार्यवाही अभियुक्तों की अनुपस्थिति में भी चल सकेगी। और हाईकोर्ट के तीन जज मुक़दमे की सुनवाई कर सकते हैं। फिर इस आर्डीनेन्स के आधार पर केन्द्रीय असेम्बली में बिल आया। बहस हुई। प० मोतीलाल, मिस्टर जिन्ना आदि ने बहुत ज़ोर से इस बिल का विरोध किया। हाईकोर्ट ने भी इसे रद्द कर दिया। वह बिल वापिस हो गया। भूख हड़ताल समाप्त होने पर मुक़दमे की कार्यवाही फिर आरम्भ हो गई। अन्त में सर्वश्री विजयकुमार, शिव वर्मा, डा० गयाप्रसाद, महावीरसिंह और जयदेव को आजन्म काले पानी की सजा हुई, और सर्वश्री भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी की सजा हुई।

फाँसी

२३ मार्च, सन् १६३१ को तीसरे पहर जेल के दरवाजे बन्द कर दिये गए। ५ बजे पिछले दरवाजे से मजिस्ट्रेट आदि जेल मे घुसे और इन तीनो देशभक्तो को फांसी के लिए तैयार होने को कहा।

"हाँ। आज हमारी परीक्षा का दिन है। आज सरकार को पता चलेगा कि क्रान्तिकारी 'कितने इरादे के हैं'।"

तीनो एक दूसरे के गले मिले और फाँसीघर की ओर रवाना हुए। उनके मन मे क्या-क्या भावनाएँ रही होगी इसका अनुमान कठिन है। फाँसीघर पहुँचते ही तीनो को फांसी के तख्ते पर एकसाथ खडा किया गया। इनके सामने वह रस्सियाँ टँगी थीं जिनका फन्दा इनके गले मे पडने-वाला था। तीनो ने तीन वार 'इन्कलाब जिन्दावाद' के नारे लगाए। अपने-अपने फांसी के फन्दो को बडे चाव से चूमा और आँख मीचकर चुप खडे हुए। जल्लाद ने फन्दे गले मे डाले और नीचे का तख्ता खीच लिया। तीनो झटके से नीचे लटक गए और पल भर मे उनके लटके हुए शरीर के तडपने से रस्सियाँ नाचने लगी। उनके माता पिता को धन्य है कि कैसे उत्साह से भारतमाता पर न्यौछावर हो गए! सव भारत-वासिया को अपनी छाती टटोलनी चाहिए, क्या हमारे मनो मे भी अपने देश का कुछ प्यार है या हम अपने कर्तव्य को भूल बैठे हैं। आज फिर चीन आक्रमण कर रहा है। भगवान हम शक्ति दे।

फांसी

२३ मार्च, सन् १९३१ को तीसरे पहर जेल के दरवाजे बन्द कर दिये गए। ५ बजे पिछले दरवाजे से मजिस्ट्रेट आदि जेल मे घुसे और इन तीनों देशभक्तों को फांसी के लिए तैयार होने को कहा।

"हाँ। आज हमारी परीक्षा का दिन है। आज सरकार को पता चलेगा कि क्रान्तिकारी 'कितने इरादे के हैं'।"

तीनों एक दूसरे के गले मिले और फाँसीघर की ओर रवाना हुए। उनके मन में क्या-क्या भावनाएँ रही होंगी इसका अनुमान कठिन है। फाँसीघर पहुँचते ही तीनों को फांसी के तख्ते पर एकसाथ खड़ा किया गया। इनके सामने वह रस्सियाँ टँगी थीं जिनका फन्दा इनके गले में पड़ने-वाला था। तीनो ने तीन बार 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाए। अपने-अपने फांसी के फन्दों को बड़े चाव से चूमा और आंख मीचकर चुप खड़े हुए। जल्लाद ने फन्दे गले में डाले और नीचे का तख्ता खीच लिया। तीनों झटके से नीचे लटक गए और पल भर में उनके लटके हुए शरीर के तड़पने से रस्सियां नाचने लगी। उनके माता-पिता को घन्य है कि कैसे उत्साह से भारतमाता पर न्योछावर हो गए! सब भारत-वासियों को अपनी छाती टटोलनी चाहिए, क्या हमारे मनों में भी अपने देश का कुछ प्यार है या हम अपने कर्तव्य को भूल बैठे हैं। आज फिर चीन आक्रमण कर रहा है। भगवान हमें शक्ति दे।

*श्री महावीर त्यागी के कुछ अन्य संस्मरणों का संग्रह 'वे क्रांति के दिन' नाम से हिन्द पाकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, शाहदरा, दिल्ली द्वारा प्रकाशित हो चुका है।